UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180648

UNIVERSAL
LIBRARY

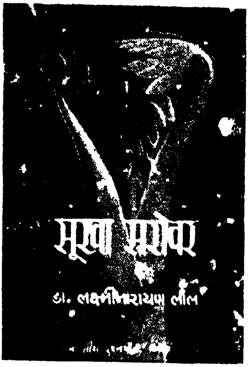

भारतीय ज्ञानपीठ, • काशी

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6 L 19 C Accession No. H 3089.

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१०६

सूखा सरोवर

लक्ष्मीनारायण लाल

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६०
मूल्य दो रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

गँगऊपुरवाली भाभी-
की पुण्य स्मृतिमें—
जिनका करुण-स्वर
मेरे मन - सरोवरमें
अब भी गूँजता है :

खिरकी बइठ राजा रोवै तू रानी पुकारै
हो मोरे राजा बिन संतन कुल हीन हम होबे जोगी !
जो तुम राजा होबो जोगी
हमहुँ जोगिन होय जाब
मोरे राजा, नगरा पइठ भिच्छा मगबै
दुनो जन जीबैं ।
सगरा म दुधवा भरैबै
कमल दल पुरइन पतवा पै सोइबै
राति भर निनियाँ न आवै, हंसिन बन पिहुँकूं
राजा चनन लगाये बड़ी दूर
महक नहिं आवै ।

उपक्रम

एक राजाकी कोई नगरी थी—नीलम देशवाली। नगरी इतनी सुन्दर, कि उसे देखने स्वर्गकी अप्सराएँ आती थीं। उस नगरीकी अलौकिक शोभाका रहस्य था, नगरीका सरोवर, जिसमें राजहंस सदा मोती चुगा करते थे।

नगरीके राजा-रानी हर पूनमको उस सरोवरमें जल-विहार किया करते थे। कंचनकी नाव, कमल परागमें रची हुई, हीरामोतीका मस्तूल, झिलमिली इन्द्रधनुषी पंखोंवाली पाल, चाँदनीकी डोर, मूँगेकी डाँड़ और जलपरियोंका संचालन।

और एक पूनममें, जब सरोवरके बूँद-बूँदमें संगीत चू रहा था, उस समय राजाकी नाव जैसे ही मझधारमें आयी, एकाएक सरोवर सूख गया। न जाने क्यों? हत भाग्य! एक अपूर्व और भयानक घटना। राज्यमें आतंक फैल गया। राजा समेत सारी प्रजा सरोवरकी शरणमें विलाप करने लगी। तब सरोवरका देवता निकला। उसने राजासे कहा, 'अगर कोई सतवन्ती नार मेरे सरोवरमें मंगलघट डाले तो मैं फिर पानी दूँगा।' यह कहकर देवता अदृश्य हो गया। भला रानीसे बढ़कर कौन सतवन्ती नार हो सकती थी! रानीने अपना घट सरोवरमें डाला, पर सरोवरमें पानी न आया। यह भी अजीब दुर्दान्त घटना! राजाने सतहीन रानीको मरवा डाला। फिर उसी रानीकी एक चेरी उस सूखे सरोवरमें जल भरने गयी। उसके घट डालते ही सरोवर जलसे भर गया। तब राजाने प्रसन्न होकर उसी चेरीको रानी बना लिया।

सरोवरमें फिर जल-विहार आरम्भ हुआ। नयी रानीके संग नगरीके राजा। तब सरोवरकी राजहंसिनिके रूपमें पहली रानी महाराजाको सुना-सुनाकर एक गीत गाती थीं······

राति भर निनियाँ न आवै, हंसिनि बन पिहुँकूं
राजा चनन लगाये बड़ी दूर
महक नहिं आवै।

मुझे इतना ही स्मरण है। दस वर्षकी अवस्था थी मेरी। मैं अठपहरा ज्वरसे (जिसे टाइफाइड कहते हैं) बीमार पड़ा था। मुझे कभी-कभी रातको नींद नहीं आती थी। मेरी तब एक भाभी थीं, उन्होंने मुझे नींद लानेके लिए एक गाथा सुनाया था। वह गाथा तो अभी और रहा होगा, गीत भी नहीं याद है, कब तक कैसे सुनाया होगा। होगा इसलिए कि उस क्षण तक मुझे नींद आ गयी थी। ऐसी नींद, जो माँकी लोरीमें प्राप्त होती है।

तो उस दिवंगतासे सुनी हुई वह अधूरी कहानी मुझे तबसे आज तक नहीं भूली। पता नहीं क्यों उस लयकी, कथागायनकी सुधि मेरे मनमें बसी रही। सरोवर! सरोवरका अकस्मात् सूख जाना, सत्की परीक्षा, तब उसमें फिरसे पानी आना,···मेरे सामनेसे असंख्य पर्तोंवाला पर्दा एकके बाद एक उठता गया, उठता गया, और अन्तमें एक अकथनीय अनुभूतिसे मैं भर गया, जो वास्तवमें अमृतपूर्ण था। मुझे लगा कि वह सरोवर तो हमी हैं, हममें ही है वह सरोवर! 'उड़ चला हंस आपाने मुलुक कौं अब यहाँ तुमरो कोई नहीं!' वह सरोवर, वह अन्तस्, जिसके नियन्ता और उपभोक्ता हम ही हैं। और एक ऐसा स्पष्ट, पर अद्भुत चित्र मेरे सामने झाँकने लगा कि मैं हैरान रह गया। मेरी हिम्मत न हो कि मैं उससे अपनी आँख मिलाऊँ।

और मर्मकी बात तो यह थी कि उस जीवन-चित्रको भीतरसे बाहर लानेके लिए मेरे पास कोई सम्पूर्ण माध्यम न था। नाटकका एक माध्यम

मेरे हाथ था अवश्य, पर उसका वह वाहन मेरे पास न था जिसे कविता कहते हैं। उस पवित्र वाहनके विना, गीतके उड़नखटोले, चन्दनकी सेज विना, वह मानस लोकका इन्द्रजालिक चित्र नीचे उतरता ही न था। पर वह चित्र इतने वेगसे मुझे मथ रहा था कि अन्तमें उसीने मुझे एक पन्थ दे दिया। मैंने नाटकके सूत्र फैलाये, उस चित्रके वेगने उसमें मेरे भावोंको रच दिया—अजीब रेखाओंमें, गतिमें, अभिव्यक्तिमें।

सच मैंने कभी कविता नहीं लिखी। और आजके मुक्तछन्द, मुक्तवृत्त वृत्तगन्धी आदिको मैं क्या जानूँ। मुझे तो विवशता थी, उस चित्राङ्कन की, जो मुझे तोड़ रहा था, और जिसे स्वयं ही फूटना पड़ा मेरे इस नाटकमें अजीब स्वरमें, स्वर संगतिमें, छन्दोंमें, जो शायद ही शास्त्र-संगत हो। उस शास्त्र-मर्यादाको सिर-माथेपर स्वीकार करते हुए मैं यह कहूँगा कि मेरे लिए यही स्वर हैं, छन्द हैं, मुख है, कर हैं, स्वाँस है क्योंकि इन्हींके वाहनसे मैं उस निर्बन्ध चित्रको बाँध सका। और मैं विनम्र स्वरमें कहूँगा, यह अभिव्यक्ति मेरी है, मैं हूँ यह, जो सीमित है, जो स्वरकी गति नहीं जानता, पर उसने गाया है, उसे गाना पड़ा है—अपने मौलिक छन्दमें, अपनी लयमें।

उन दिनों [नवम्बर ५५ ई०] मैं डाक्टर रघुवंश और रामस्वरूप चतुर्वेदीके साथ रहता था ३४, चैथम लाइन्समें। मैंने छिप-छिपाकर 'सूखा सरोवर' का लिखना वहीं आरम्भ किया। एक दिन मैं पकड़ा गया, फिर दिखाना पड़ा, और अन्तमें सुनाना भी। मुझे याद है, मैंने किस संकोच, उदासी पर अकथ स्वर संगतिके बीचसे उन दोनों बन्धुओंके सामने इसका प्रथम रूप आद्यन्त सुनाया था। मैं कृतज्ञ हूँ उन क्षणोंके प्रति।

—लक्ष्मीनारायण लाल

સરોવર

पहला अङ्क

सूखे सरोवरका तट

●

दूसरा अङ्क

अन्तराल

राजप्रासादका प्रकोष्ठ

●

तीसरा अङ्क

सूखे सरोवरका तट

पात्र

●

संन्यासी

[अन्तराल दृश्यका असली राजा]

वृद्ध

नगरीका राजा

[अन्तराल दृश्यका छोटा राजा]

पुरोहित

पागल

राजमाता

राजकुमारी

[आत्मा]

नगरीके पाँच व्यक्ति

सरोवरका देवता

तथा नगरीके अन्य लोग, कुछ सैनिक आदि

काल

●

आज, और आजसे बहुत-बहुत दिन पहले

स्थान-देश

●

एक नगरी, और उसके सूखे सरोवरका तट

पहला अंक

•

[पर्दा उठनेसे पूर्व ही, युगल स्वरमें]

पंछी उड़े अकाश
लगा सरोवर सूखने,
तीर लगाये आस
हंसा-हंसी न उड़े ।
चल चंदाके देश
कुमुदिन रोई कमलसे,
मैं जाऊँ केहि देश
चन्दा रोया सुरुजसे ।

[क्षीण संगीतकी भूमिकासे धीरे-धीरे पर्दा खुलता है । पर समूचे दृश्यपर अंधकारकी इतनी पर्तें पड़ी हुई हैं कि मंचपर प्रायः कुछ नहीं दीखता, चारों ओर अजब सन्नाटा, जैसे श्मशानकी काली रात हो ।

इसी स्थितिपर गेय स्वरोंमें, जैसे बहुत दूरसे किसी स्त्री-स्वरकी प्रतिध्वनि आ रही है ।]

सूख गया क्यों, देखा किसने
मनका मोती आँखका पानी ।

प्रभु नयनन जो आँसू बरसा
वह जीवन-सरवरका पानी ।
डूब गया क्यों खोया किसने
मनका मोती आँखका पानी ।
मेघ मरुत् पानीके बीरन
चाँद-सुरुज सागरके पानी ।
रूठ गया क्यों बाँधा किसने
मनका मोती आँखका पानी ।

[धीरे-धीरे दृश्यपर मटमैला-सा प्रकाश फैलता है, और मंचका सारा दृश्य स्पष्ट होने लगता है— ऐसा दृश्य, जो वास्तवमें इन्द्रजाल-सा लगता है। पृष्ठभूमिमें सूखे सरोवरकी गहरी छातीमें अँधेरा फैला है, इधर-उधर सूखे पेड़-पौधे और वृक्षोंके ठूँठ दिख रहे हैं, जिनसे भय बरस रहा है। और चारों ओर मौत जैसा सूना-सूना लग रहा है, जैसे सूखे सरोवरकी अदृश्य व्यापकतामें कहीं काल-सर्प छिपा बैठा है, जिसके विषैले धुँएसे मानो सन्नाटेका भी दम घुट रहा है।]

[वृद्धका प्रवेश, लाठीके सहारे आकर सूखे सरोवरकी ओर देखकर त्रस्त रह जाता है।]

वृद्ध : [करुणासे] आखिर सरोवरको सुखा ही दिया ! सरोवर वालो !

सरोवरके रस भोगी !
विवश कर डाला सरोवरको !
मैंने कहा था उस दिन,
ऊँचे स्वरमें कहा था :—
पानीका घट है सरोवर
छनमें फूट सकता,
छनमें सूख सकता।
आँच आये आने दो
सरोवर है तुम्हारे पास
पर साँच मत जाने दो
वही मर्यादा है सरोवरकी।
तुम सब हँसे थे
राजाने बन्द कर लिये थे कान
मैंने कहा था
सरोवर पानी ही पानी नहीं
प्यास भी है—
अपनी ही नहीं
सारी नगरीकी।

[सोचता हुआ टहलता है।]

सूख गया आख़िरकार
मैंने कहा था तब भी
उस दिन भी

जब राजाने बंदी किया था मुझे
केवल इस अभियोगपर—
यह कहनेपर
कि राजा भी हमारी तरह व्यक्ति है
हम समाज हैं एकसे एक मिलकर
इसलिए हर व्यक्ति राजा है।
राजा ही समाज है
और हम सबके ऊपर है यह सरोवर
रसदाता, जीवनदाता, नियंता
सत्य सबका।

[पृष्ठभूमिसे तुमुल स्वर—पानी, पानी]

वृद्ध : [छिपता हुआ] कौन है यह ?
ओह कोई प्यासा है।
नहीं नहीं !
पुरोहित है नगरका
छिप जाऊँ, राजाका प्रतिनिधि है,
बंदी करा देगा
फिर सुनेगा मुझे कौन !

[सरोवरके अंधेरेमें बढ़ने लगता है, उसी समय पुरोहितका प्रवेश]

पुरोहित : [आवेशमें आगे बढ़कर] कौन है तू ?
बोल, रुक जा वहीं मुझसे छिप नहीं सकता

मैं शब्द बेधता हूँ
रुक जा नहीं तो···।

वृद्ध : [घूमता हुआ]—नहीं तो क्या···
मृत्यु यही न !
कि इससे भी बढ़कर है कुछ तुम्हारे स्वत्वमें ?
बन्दी कराया था तुम्हीने सत्य कहनेपर, उस बार
सारी जवानी कारागारमें पिस गई
अब शेष है बुढ़ापा
ले लो इसे भी।
पर कहूँगा—और भी शक्तिसे कहूँगा
तुम्हीं लोगोंने सुखाया है सरोवरको।

पुरोहित : [आवेशमें] पकड़ लो इसे, पकड़ लो
मरोड़ दो इसके स्वर
खींच लो जिह्वा !

[वृद्धकी ओर दौड़ता है, वृद्ध भागने और बचनेका प्रयत्न करता है।]

पुरोहित : [खींचकर सामने लाता हुआ]
अब कहो,
बोलो अब !

वृद्ध : अब भी कहूँगा

अन्तिम स्वर तक कहूँगा ।

पुरोहित : चल कारागारमें कह
दीवारें सुनेंगी तुझे !

वृद्ध : कह तो चुका
शब्द वायुमण्डलमें बो दिया,
शब्द बेधी !
देखूँगा कैसे बेधते हो वायुमण्डलको !

पुरोहित : वाचाल
चुप हो जा
चल कारागारमें ।

[खींचता है, तभी एक भागा हुआ व्यक्ति आता है ।]

व्यक्ति : [हाँफते हुए] मैं मुक्त हूँ
अब मुक्त हूँ मैं !
राजाका बन्दीगृह टूट गया,
तीस वर्ष बाद अभी छूटा हूँ !

पुरोहित : होशमें रहो !

व्यक्ति : मैं होशमें हूँ
तुम्हें पहचानता हूँ मैं
धर्मके पीछे राजनीति है तू
पुरोहित नहीं, राजाका वाहन है तू
मैं होशमें हूँ !

क्योंकि मुक्त हूँ
बेहोश तुम हो
सारी नगरी है
राज्यके सैनिक हैं
क्योंकि सब प्यासे हैं
तभी बन्दीगृह टूट गया राज्यका।
धन्य है सरोवर।
यदि तुम सूखते नहीं
हम कैसे जानते मुक्ति क्या है!

[पुरोहित घबराकर वृद्धको छोड़ देता है]

वृद्ध : क्यों, अब बन्दी नहीं करोगे?
बोलो, देखते क्या हो?
छोड़ क्यों दिया?

व्यक्ति : [जिज्ञासासे] तुम्हें यह बन्दीगृह ले जा रहा था?

वृद्ध : हाँ, यह कह रहा था
मैं बन्दी हूँ!

व्यक्ति : [वृद्धका हाथ पकड़कर]
यह स्वयं आत्मबन्दी है
अब क्या करेगा यह.
राजा सरोवर है हमारा।
हम कहेंगे उसीसे
चलो मेरे संग

हम सैकड़ों बन्दी
जो अभी छूटकर भगे हैं
सब उस तीर पर खड़े हैं।

[वृद्धको आगे बढ़ाता हुआ]

जो मुक्त थे अब तक कुछ नहीं कर सके
उन्हें मुक्तिका अर्थ-बोध ही नहीं
हमें बोध है, हम बन्दी थे
अब हमी मुक्ति देंगे सभीको।

[दोनों सरोवरकी तरफ़ चले जाते हैं, पृष्ठ-भूमिमें जन-कोलाहल उभरता है। कोलाहलमें रुदन है, हाहाकार और त्रसित स्वर हैं। नगरीके कुछ लोगोंके आनेकी आहट पाकर पुरोहित जैसे बेहोशीसे एकाएक होशमें आ जाता है, और जल्दीसे बढ़कर पेड़के एक ठूँठके पीछे छिप जाता है। पृष्ठभूमिका कोलाहल बहुत ही समीप आकर जैसे एकाएक टूट जाता है, तभी बिलकुल भय खाये हुए, डरसे काँपते हुए नगरीके पाँच लोगोंका प्रवेश]

सब : [सरोवरके सम्मुख घुटने टेककर]
हाय यह क्या हो गया !
सरोवरका पानी

हाय यह क्या हो गया !

[चकित एक दूसरेको देखते रह जाते हैं]

प० व्यक्ति : पूरे दस घण्टे हो गये इसे सूखे ।

दू० व्यक्ति : रातके पिछले पहर एकाएक···

ती० व्यक्ति : पता नहीं क्यों, कैसे, कहाँ ।
यह एकाएक सूख गया ।

चौ० व्यक्ति : कितना अथाह था सरोवरका पानी
फिर कैसे सूखा !
कोई बताता नहीं !

पाँ० व्यक्ति : प्यासे, सब डर गये
हर गयी सबकी दीठ !

प० व्यक्ति : ऐसा कभी नहीं हुआ
अचिर-अनादि था सरोवर !

[सबका स्वर एकीकृत हो काँप उठता है ।]

हाय यह क्या हो गया
सरोवरका पानी
हाय यह क्या हो गया ।

[सहसा ठूँठे पेड़के पीछेसे आवाज़ आती है ।]

आवाज़ : सुन लो नगरीवालो
मैं बताता हूँ
मैं परोक्ष-सत्ताका स्वर हूँ

प० व्यक्ति : [बीचमें ही] पुरोहित !
राज-पुरोहित !!
यह राज-पुरोहितका स्वर है !

सब : [रोकते हुए] सुनो सुनो, मत बोलो !!
कोई देवता है !

प० व्यक्ति : देवता है तो
परोक्षसे क्यों ?

आवाज़ : मैं सामने ही हूँ
बस, माया-मोहका पर्दा है
पहले सुनो तो मुझे
मैं सत्य दूँगा, विश्वास मानो।

सब : हाँ-हाँ सुनो
बोलो नहीं,
सुनो !

आवाज़ : मैं धर्मराज हूँ इस नगरीका
तुम सब धीरे-धीरे धर्मच्युत हो गये,
राजासे तर्क करने लगे तुम
राजाको व्यक्ति मानने लगे तुम
ईश्वरपर शंका करने लगे तुम।
दान-पुण्य लोकाचार धर्माचार
सबको छोड़ते गये तुम
जो कुछ धर्म था, धर्मजनित कर्म था,
सबसे, सबको, सब तरह—

तोड़ते गये तुम !
सबको आडम्बर कहा
सबको अंधज्ञान कहा
ज्ञानी तुम बन गये
तभी धर्मने सरोवरको सोख लिया ।

सब : [आर्त स्वरसे] क्षमा, क्षमा हो देवता
क्षमा हो धर्मराज ।

[एकाएक पृष्ठभूमिसे हँसीकी एक रेखा खिंचती है, और संन्यासीका प्रवेश]

संन्यासी : उठो, मत माँगो क्षमा आडम्बरसे
झूठसे
प्रपंचसे !

[सब लोग देखते रह जाते हैं ।]

संन्यासी : स्वार्थी वह
औरोंकी रट-रटकर
जो बोल दे ऊँची बात
अभिनय कर दे किसीका
ऐसा जो बहा ले जाये अपनेमें
समझो वह भयानक है
भूखा अजगर जैसा
खींचता है जो अपने अहंकी खोहमें !

[विराम]

तुम सबने सत्य पा लिया
वह भी धर्मराजसे
लेकिन वह छिपा क्यों है ?
बोलता क्यों है ठूँठके पीछे खड़ा हो ?
हाय, सोचा कभी ?

प० व्यक्ति : मैंने प्रश्न किया था
कहा था मैंने
मैं विना वक्ताको देखे
सुनूँगा ही नहीं

संन्यासी : [बीच ही में हँसता है]
आओ देखें क्या है ?

[सब बढ़ते हैं, जैसे ही संन्यासी ठूँठके पीछे जानेको होता है पुरोहित छिपकर भागता है, लोग उसे पकड़ने दौड़ते हैं।]

संन्यासी : [सबको रोककर] देख लिया !
असत्यको पा लिया
छोड़ो-छोड़ो अब
उसे क्या पकड़ना !
[विराम]
देखा,
यही था तुम्हारा धर्मराज !

सब : [आपसमें] पुरोहित था यह तो !

प० व्यक्ति : मैंने पहचान ली थी उसकी बोल

संन्यासी : फिर असत्यको भेदा क्यों नहीं ?

प० व्यक्ति : हम सब प्यासे थे !

संन्यासी : [व्यंग्यसे] हम सब प्यासे थे !
नहीं, मूल सत्य पहले कहो
हम सब झूठे हैं
झूठ संजो रहे हैं ।

[विराम]

[जैसे स्वयंसे] पर कोई चिन्ता नहीं,
एक सत्यके लिए
चाहिए हमें लाखों झूठ
यही वह पंक है, गलीज है
जिससे जीवन पाकर
सत्यका नन्हा-सा ज्योति कमल उगता है !

सब : [करुणासे] पर सरोवर है कहाँ
हाय, कमल कैसे उगेगा !

संन्यासी : ऐसा न कहो
सरोवर तो है !

[बीच हीमें सब एक स्वरमें जैसे काँपकर कराह उठते हैं ।]

पर हाय यह क्या हो गया ?

संन्यासी : [आगे बढ़कर] मैं संन्यासी हूँ

मेरे माथे पर कितनी रेखाएँ
झुर्रियाँ जितनी शरीरमें
जितने चिह्न, जितने दाग़
ऊपर हैं मेरे,
उनसे दुगने भीतर हैं !
मैं सहज नहीं हूँ
असहज है विकास मेरा
पर मैं प्रतिक्रिया नहीं हूँ
क्रिया हूँ, तीक्ष्ण हूँ
पर कटु नहीं हूँ
बस प्रगति हूँ किसी गतिका
यही मैं हूँ ।

प० व्यक्ति : कौन हैं आप ?

संन्यासी : बस, यह नगरी जन्मभूमि है मेरी
जीवन यह सरोवर है,
मैं संन्यासी
पर सापेक्ष्य हूँ दोनोंसे

[दूर पृष्ठ-भूमिमें कोलाहल उभरता है 'पानी-पानी' के स्वर ऊपर फैलकर डूब जाते हैं ।]

पाँ० व्यक्ति : सब चीख़ रहे हैं—पानी दो, पानी दो !

चौ० व्यक्ति : हाय क्या हो गया

भविष्य क्या कहेगा !

तीο व्यक्ति : जो आगत है
उसीकी चरम सीमा ।

संन्यासी : चुप रहो
प्यासे हो, पर हो तो ।
प्यास भी तप है
अन्तसमें जगेगा कुछ
निश्चय जगेगा ।

[सोचता हुआ टहलने लगता है]

आगत परीक्षा है तुम्हारी आस्थाकी
इसे दर्शनकी मुट्ठीमें कस लो,
फिर जो अनागत है
वह निश्चय ही सुनहरा पावन है ।

पο व्यक्ति : हम क्या देंगे तप, क्या उत्सर्ग देंगे !
हम कुछ नहीं जानते ।

संन्यासी : [डाँटता-सा] मत बोलो दयाके स्वरमें
अन्तस कलंकित होगा ।

पο व्यक्ति : जब तक नहीं दोगे अपने शब्द
हम प्यासे बोलते रहेंगे-बोलते रहेंगे ।
विकल्पहीन
अर्थहीन
अन्तमें शब्दहीन-स्वर हीन ।

संन्यासी : लगता है मुझे
जड़ नहीं था यह सरोवर
चेतन था अतिचेतन कोई

[रुककर जैसे सोचने लगता है।]

लगता है मुझे
कोई देवता था सरोवर
यह अतल गहराई,
लगता है देवताकी छातीका घाव है यह-
अतल स्पर्शी घाव
जो बिना पूजे ही सूख गया।

सब : [त्रस्त होकर] देवता था सरोवर !

संन्यासी : पता नहीं क्यों
लगता ऐसा ही है,
देखो, सूखे सरोवरका अंक
जैसे कोई मन्त्र पढ़ रहा है
जीवन दानका
और सतत बरस रहा है,
किसी शिशुके माथेपर
जो प्यासमे कबका मर गया है,
उस जननीके अंकमें
जो रुग्ण है, अचेत है।

प० व्यक्ति : लेकिन यह कैसे !

दू० व्यक्ति : हम पूजते चले आये सरोवरको
पूजते चले आये !

ती० व्यक्ति : नित्य अर्घ्य, दीपदान
देता था समूचा नगर ।

चौ० व्यक्ति : हम तो प्रथम भाग देते चले आये
नगर-सरोवरको ।

संन्यासी : पर केवल स्वार्थवश
विना यह जाने
कि इसका भी ईश्वर है ।

पाँ० व्यक्ति : हम पुरवासी
क्या जाने यह रहस्य !

चौ० व्यक्ति : हम तो परम्परा हैं
आज्ञाओंपर चलते हम ।
दण्ड संकेत है हमारा
अपनी-गति-हमने
राजाको सौंप दी है
हम तो गति हैं उसीकी ।

संन्यासी : तो कुछ नहीं है तुम्हारे पास ?

पाँ० व्यक्ति : यह तत्त्व राजा जाने ।

संन्यासी : फिर क्या बोलूँ
किसे दूँ शब्द !

प० व्यक्ति : हम कहाँ भूले
कहाँ चूके हम ?

कहाँ तोड़ा अपनेको
हमें क्या ज्ञान ?

संन्यासी : जाकर पूछो राजासे
पुरोहितसे पूछो

प० व्यक्ति : ओह ! पूछा है हमने
तबसे अनेकों बार
राजा कुछ नहीं बोलता
प्रश्नपर आता ही नहीं
हमें क़िस्से सुनाता है
भाषण देता है हमारे गौरवका ।

संन्यासी : जाकर कहो
स्पष्ट शक्तिसे कहो !
हमें पानी दो
हमें मरना नहीं है ।

प० व्यक्ति : राजा चुप रहेगा

संन्यासी : [बीच ही में]
सुनो
मैं मिलूँगा उस राजासे ।

[तीन व्यक्ति दौड़कर जाते हैं, पृष्ठभूमिमें जन-कोलाहल]

प० व्यक्ति : हाय कोलाहल नगरका
कितना करुण हो रहा है !

पाँ० व्यक्ति : प्यास बढ़ रही है।

[एकाएक वही वृद्ध सरोवरकी ओरसे प्रविष्ट होता है]

वृद्ध : अभी क्या
बीतने दो समय
इसी तरह हाथपर हाथ रखे
चुप खड़े देखते रहोगे,
जब एक दिन···

संन्यासी : बस चुप···
अमंगल कुछ नहीं

[विराम]

कौन हो तुम ?

वृद्ध : एक वृद्ध इस नगरीका
जो अब तक नहीं मरा
मर चुके शेष सारे वृद्ध

[विराम]

सम्भवतः मैं अपने यौवनकी छाया हूँ
वह यौवन, पचास वर्षका
जिसे राजाका बन्दीगृह खा गया।

संन्यासी : तो निश्चय ही किसी सत्यका अंश
मिला होगा तुम्हें,

मुट्ठी भरी होगी तुम्हारी ।

वृद्ध　　:　[मुट्ठी खोल देता है] देख लो ख़ाली है
कुछ भी नहीं है यहाँ
प्यास भी नहीं है ।

['कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं है, प्यास भी नहीं है', यह कहता हुआ चला जाता है ।]

पाँ० व्यक्ति :　सब विक्षिप्त-पागल हो रहे हैं
इस भाँति सब घूमते हैं
गली कूँचे, राज पथ
घर-आँगनमें !

संन्यासी　:　यह वृद्ध पागल नहीं है !
आँखोंमें यातनाकी आग है !

प० व्यक्ति　:　[बीच ही में] बोलो हम क्या करें,
आज्ञा दो उपाय दो कोई !

संन्यासी　:　देगा कौन ?
कोई नहीं देगा !
यातना में तुम हो ।
दूसरोंसे गति माँगते हो ।
धिक्कार है तुमपर
धिक् है तुम्हारी यातनाको !

प० व्यक्ति　:　और तुम क्या हो ?
क्या तुम बच जाओगे—

सूखे सरोवरसे !

संन्यासी : [हँसता है] क्रोधमें आगये !

सच है,

प्यासोंकी गति ही क्या है !

[एक क्षण सोचकर] सुनो शरण जाओ सरोवर देवताकी

इस खुले गहरे घावको

आँसुओंसे शीतलकर

करुणा जगाओ सरोवर देवताकी ।

दो० व्यक्ति : और तुम

मैं आवाहन करूँगा

बुलाऊँगा नगरकी वेदनासे ।

दो० व्यक्ति : [विनय-नत] हम शरण हैं सरोवर देवता !

हम शरण हैं !

संन्यासी : [आगे बढ़कर] मैं संन्यासी बहुत दिनोंपर घर आया था

जिस क्षण सरवर सूख रहा था—

सुना और देखा था मैंने

बन्द कमल रोये थे कैसे

तड़पी थीं कलियाँ पत्तोंपर

कुमुदनी कुँहकी थी कमलोंसे,

हंसिनि रोई थी हंसासे ।

खड़ा तीर मैं देख रहा था

माथ झुकाये धँसा जा रहा,
धँसा जा रहा, नीर देवता मैंने देखा ।

[उसी क्षण तीनों व्यक्तियोंके सँग नगरीके राजाका प्रवेश]

प० व्यक्ति : यह हैं राजा हमारे
शासक इस नगरीके !

संन्यासी : और मैं संन्यासी हूँ, राजा, तुम्हारी इस भूमिमें, जहाँ पानी नहीं है !

[बहुत तेज हँसी उठती है, और एक पागलका प्रवेश ।]

पागल : [हँसी बन्द करता हुआ]
तुम दोनों अभागे
सारी नगरी अभागी,
केवल मैं हूँ सुभागा
मुझसे माँगो
पानी मुझमें है ।

[हँसी बिखेरता हुआ एक ओर चला जाता है ।]

दू० व्यक्ति : पागल विक्षिप्त है यह
आजीवन कारावास-दण्ड भोगी था !

संन्यासी : क्यों राजा ,
नगरीके पालक !

राजा : क्या करूँ ?
कुछ समझमें नहीं आता ।

संन्यासी : सच ?

राजा : सच, कुछ नहीं ।

संन्यासी : अच्छा
तुम सब शरण हो
सरोवर देवता है
राजा नहीं ।

[राजाके संग सब लोग सरोवरसे नत-मस्तक होते हैं । संन्यासी दाईं ओर खड़ा होकर दायाँ हाथ आकाशकी ओर फैलाता है और बायें हाथसे निर्देश देता है ।]

संन्यासी : नगरीके राजा
और कंधा मिलाओ प्रजासे
और संपृक्त हो
नगरीके राजा
तुम और झुको
छू लो मस्तकसे धरा ।

[राजाका मस्तक धरतीपर झुक जाता है ।]

संन्यासी : प्यासी नगरी पुकारती,
हम आवाहन करते
शरण हैं तुम्हारे हम

ओ सरोवरके देवता !
देखो, राजाका मुकुट धरतीपर
ओ सरोवरके देवता
यतिके, नियमके, मूल्य-मर्यादाके ।
क्रोध अवज्ञा,
विघटनको हमारे
स्वर दो हमें, हम जानें
ओ सरोवरके देवता !
भावसे निकलो, अंध-गह्वरको चीर आवो
नीरके देवता हमें अपनी पीर लाओ !

[धीरे-धीरे मंचका सारा प्रकाश बहकर सूने सरोवरकी ओर चला जाता है और वहाँ एकाएक एक तीव्र आलोक फैलता है । ऊपरसे तूफ़ानका गर्जन और वायुके थपेड़ोंसे सारा वातावरण भर जाता है । उस बीच कभी-कभी एक काँपती हुई प्रकाशकी रेखा संन्यासी और शरणागत राजा-प्रजाके ऊपर पड़ती रहती है । संन्यासी अपनी उसी मूल-मुद्रामें अडिग खड़ा है और उसके मुखसे वही स्वर 'शरण हैं तुम्हारे हम, ओ सरोवरके देवता'—सारे तूफ़ानी वातावरणके ऊपर खिंचा रहता है । सहसा सरोवरके तीव्र आलोकसे एक अत्यन्त तेजवान मानव शरीरधारी सत्ता निक-

तो स्वर ही दो हमें !

देवता : [मीठी हँसीकी रेखा खींचकर]

भाग गया राजा !
सबसे छिपाकर
छिप गया राजा !

सब : [इधर-उधर ढूँढ़ने लगते हैं] सच, भाग गया ।
छिप गया कहीं !!

संन्यासी : छिप गया !
अब मुझे याद आ रहा है कुछ

देवता : भाग जाने दो, छिप जाने दो ।

संन्यासी : अतल सरोवर
तुम सूख गये
यह कितनी अपूर्व घटना,
इस नगरकी ।

देवता : अपूर्व ही नहीं
अपनी संस्कृतिकी पहली
भयावह घटना !

[सब एकाग्र दृष्टिसे देखते रहते हैं ।]

देवता : पहले तुम सब मर्यादा हो
फिर व्यक्ति हो ।
मैं देवता नहीं
मर्यादा हूँ इस सरोवरकी,

और वह मर्यादा क्या है ?

[पृष्ठभूमिमें फिर जन-कोलाहल]

संन्यासी : देवता !
यह कोलाहल क्रान्तिकी नहीं
केवल प्यास की है !

देवता : सुनो, प्रकृतिस्थ हो सुनो
मैं शब्द देता हूँ
वह शब्द जीवनका है ।
देना, केवल देना
सतत हर क्षण देना
मेरी मर्यादा यही जीवन है ।
मैंने दिया था शब्द
इस नगरीके उस आदि राजाको ।
जिस क्षण इस जीवनमें
कोई आत्म-हत्या करेगा
उस क्षण मैं वापस ले लूँगा
सारा जीवन इस सरोवरका,
मेरी मर्यादा है यही ।
यह शब्द मैंने इस नगरीके
उस आदि राजाको दिया था
जो इस नगरीका प्रतिनिधि था
शासक ही नहीं अंग था, व्यक्ति था जो ।

कटिमें, बाहुमें, माथेमें, मुट्ठीमें,
तन-मन प्राणोंसे प्रतिश्रुत हो,
उसने लिये थे ये मेरे शब्द
और ये शब्द मुझे
मेरे जीवन दाताने दिये थे।
मैं भी प्रतिश्रुत हूँ उसीसे

संन्यासी : सुनो ! [याद करता हुआ]
'जिस क्षण इस जीवनमें
कोई आत्म हत्या करेगा।
उस क्षण मैं वापस ले लूँगा
सारा जीवन इस सरोवरका !'

प० व्यक्ति : [घबराकर] आत्म-हत्या !
आत्म-हत्या !
यह क्या है ?
किसे कहते हैं आत्म-हत्या !

दू० व्यक्ति : किसी पशु-पक्षीका नाम होगा।

ती० व्यक्ति : तभी भंग मर्यादा हुई होगी।

पाँ० व्यक्ति : इसीलिए क्रुद्ध हैं सरोवर देवता।

सब : [समवेत] क्षमा !
क्षमा दो सरोवर देवता !
अब नहीं होगा यह कुकर्म

देवता : [हँसता है] संन्यासी !
ओ संन्यासी !

[हँसता है]
कितने भोले हैं
नगरके लोग !

संन्यासी : ओह यह क्यों ?
तुम रो रहे हो देवता !

देवता : क्या करूँ शब्द जो मुझे देना है
वचनबद्ध हूँ जो
जो बताना है मुझे
कि आत्महत्या किसे कहते हैं
क्या है यह ?
[स्वर गीला हो जाता है]
आजसे मेरा नाम
पहला होगा, पापी-हत्यारोंमें !
संस्कृति कहेगी
वह सरोवरका देवता था
जिसने नगरीको
आत्म-हत्याकी संज्ञा दिखाई थी
लोगोंको बताया था
क्या है वह संज्ञा
सुझाया था लोगोंको
वह कुरूप सत्य !

संन्यासी : नहीं-नहीं
यह कलंक मेरा है ।

और मुझपर वही अंकित रहेगा !

देवता : [आगे बढ़कर] सुनो पी चुका वह विष
अब सुनाता हूँ !

[स्वर करुण हो जाता है]

इस नगरीकी राजकुमारी
अनिंद्य सुन्दरी, योजन गंधा
सहस दलोंकी कमल पाँखुरी
इस नगरीकी राजकुमारी
अर्ध रातको डूब मर गई
निज इच्छासे इस सरवरमें
जिस सरवरका मैं ही हूँ
अभिशप्त देवता ।

[जैसे सिसककर रोने लगता है ।]

यह आत्म हनन
औ साधन मैं !
टूट-टूट सब बिखर गया !!

संन्यासी : बूँद-बूँद सब सूख गया ।

संन्यासी : तभी भागा, राजा नगरीका
ज्ञात उसे था !

प० व्यक्ति : तभी तो राजा चुप था इतना !
कहाँ कुछ बोला तबसे !!

ती० व्यक्ति : हम रोते थे, वह रोता भी नहीं था ।

संन्यासी : प्यासे !
मत बोलो अभी !!

देवता : संन्यासी !
शेष सत्य तुम जानते हो
मैंने देख लिया आँखोंमें
सबका चित्र है तुम्हारे पास
कह दो
कह दो तुम्हीं !

संन्यासी : है तो
पर ये सब प्यासे हैं
तुम्ही कह दो सरोवर देवता !
तुममें आस्था करेंगे ये
अधिकृत हो तुम !

देवता : [सरोवरसे दूर देखता हुआ]
देखो वह आ रहा है
भागता चला आ रहा है
उन्मत घायल हिरन जैसा
जिसकी हिरनी मारी गयी हो
जब वह सो रहा हो प्रियाके स्वप्नमें !
देखो वह आ रहा है
कैसी भटकन है पाँवोंमें
पागल विक्षिप्त
ढूँढ़ चुका सरोवरमें

हर गिरिगह्वरमें माथा लड़ा चुका
घायल लोहूलुहान
देखो आ गया

[पुरुषका प्रवेश]

पुरुष : [लड़खड़ाता हुआ] देवता, ओ देवता !
तूने छिपा ली मेरी प्रिया
राजकुमारी-मेरी प्रिया !
तूने छिपा ली
दे मेरी प्रिया !
मैं माँगता नहीं पानी
मैं प्यासा नहीं हूँ
कभी नहीं पियूँगा
तेरे सरोवरका पानी
उसने डुबो ली मेरी प्रिया !

[पृष्ठभूमिसे 'मारो-मारो' की आवाज़ उठती है। उसी दम मंचके पाँचों व्यक्ति भी 'मारो मारो' कह पुरुषकी ओर दौड़ते हैं। संन्यासी बढ़कर बीचमें आ जाता है।]

संन्यासी : नहीं, नहीं मत मारो इसे
जानते हो दोषी कौन है !

सब : [एक स्वरमें] हम नहीं जानेंगे
पहले प्रतिशोध लेंगे !

संन्यासी : [व्यंग्यसे] कर लो अन्धी प्रतिहिंसा
कर लो, मिटा लो !
पर इधर देखो
सरोवरका देवता चला गया

प० व्यक्ति : कारण यह पुरुष है
शत्रु है इस नगरीका !

दू० व्यक्ति : घोंट दो गला इसका
यही है कारण आत्म हत्याका !

संन्यासी : अविवेकी
कायर रुको !
प्यासोंकी आत्मा प्यासी,
कारण राजा है नगरका—
राजकुमारीका पिता
जो इस पुरुषसे घृणा करता रहा
राजकुमारीके मन आत्माके विरुद्ध
जो दूसरे पुरुष संग व्याह रच रहा था
क्रय-विक्रय कर रहा था···

सब : [आवेशमें] नहीं घातक यही पुरुष है
विश्वासघाती है नगरका।

['मारो-मारो'का स्वर उठता है, पाँचों व्यक्ति इस पुरुषको पकड़ने दौड़ते हैं। मंचके अन्तिम सिरे तक पुरुषकी रक्षाके लिए संन्यासी दौड़ता है।]

संन्यासी : अरे रुको, रुको
मत मारो उसे !
मत दो अन्धी यातना
छोड़ दो उसे !

[दोनों हाथ उठाकर]

अरे मारो उसे
जो सुधिमें है
जो भागकर छिप गया कहीं !

[चारों ओर 'मारो-मारो'के स्वरसे सारा वातावरण भर जाता है। सबके ऊपर केवल संन्यासी की आवाज़ गूँजती है]

संन्यासी : प्यासे अविवेकी
मत मारो उसे !
मत मारो उसे !!

[पृष्ठभूमिका कोलाहल दूर चला जाता है। मंच पर अकेला संन्यासी खड़ा-खड़ा उसी ओर शून्यमें देखता रहता है। कुछ क्षणों बाद जैसे वह एकाएक जग जाता है और सूखे सरोवरकी ओर बढ़ता है। एक सूने सिरेपर पहुँचकर वह फिर घूमकर खड़ा हो जाता है और दोनों भुजाओंको आकाश में फैलाकर जैसे किसीको उद्बोधन दे रहा हो।]

संन्यासी : मैं चुप निष्क्रिय था युगोंसे
क्यों दी तूने चुनौती मुझे ?
जो कुछ दहक रहा था अंतसमें
क्यों दिया तूने व्यंग मुझे ?
अपनी आग, सारा विष युगका
मैं लिये कण्ठमें चला जाता
क्यों दिया तूने आवाहन मुझे ?
जितनी क्षति, जितने घाव बाहर हैं
उससे असंख्य गुने भीतर छिपे हैं मेरे ।
नाहक क्यों दी दया तूने मुझे ?

[बाहोंमें मुँह छिपा लेता है और कुछ क्षण चुप हो जाता है, जैसे कण्ठ भर आया है ।]

मेरे पास चित्र हैं
मुझे चुप रहने देता
मत छेड़ता मेरे स्वरकी टूटी बाँसुरीको
मनकी वीणा रख दी थी कहीं
क्यों तूने छू दिया मुझे ?

[अन्तिम पंक्तिको धीरे-धीरे दुहराता हुआ सरोवर के तीरपर घूमता रहता है, फिर थककर एक ठूँठ के सहारे बैठ जाता है ।]

संन्यासी : यह सब कुछ बाहरका था,

अब भीतरका दिखाना पड़ा—
अन्तराल अन्तसका

[सहसा भाव बदलकर]

हर तार, रेशेमें
हर ग्रन्थि, हर डोरमें
अपनी परिधि है, तनाव है
सबको तोड़ूँगा उधेरकर
बिनूँगा कुछ ऐसा
जिसमें आँचल हो सरोवर-सा
ऐसा सरोवर जो कभी सूखे ना
ऐसा सरोवर जो नगरीका हो
जिसकी मर्यादा
अबाध हो
अक्षुण्ण हो
अच्युत हो वहाँके लोग

[धीरे-धीरे मंचका सारा प्रकाश लुप्त हो जाता है।]

[पर्दा]

दूसरा अङ्क

●

[अन्तराल]

[मंचपर राज-प्रासादके प्रकोष्ठका दृश्य उपस्थित होता है। पीछे, बीचो-बीच एक खाली सिंहासन रखा हुआ है। दायीं-बायीं ओर दो सैनिक उसकी रक्षामें पहरा दे रहे हैं।]

पहला सैनिक: हम पहरेदार।

दू० सैनिक : चुप !
धीरे बोलो
सुन लेगा कहीं।

पहला : कौन ?

दूसरा : वह जो राजा नहीं है
पर कहता है—सिंहासन मेरा है।

पहला : सावधान !
यह जड़ सिंहासन चुग़ली कर देगा
अपने अभिभावकसे।

दूसरा : हाँ-हाँ पहरा दो
कोई आ रहा है !

पहला : चुप हो जाओ !

[दोनों तेजीसे चुपचाप घूमने लगते हैं, क्षण भर बाद भीतरसे किसीके आनेकी आवाज़ होती है]

प० सैनिक : [धीरेसे] असली राजा आ रहे हैं।

दू० सैनिक : सौभाग्य है
दर्शन पा लेंगे हम !

[राजाका प्रवेश, दोनों सैनिक उन्हें अभिवादन देते हैं।]

राजा : सारी रात जगकर
तुम किसे पहरा दे रहे हो ?

दोनों : [एक स्वरमें] पता नहीं राजन् !

[दोनों सैनिक नतमस्तक चुपचाप खड़े हैं।]

राजा : किसकी आज्ञा है यह
जिससे तुम बँधे हो यहाँ ?
किसका अनुशासन है ?

प० सैनिक : छोटे राजाकी !

राजा : ओह ! मेरे लघु भ्राताकी !

[अस्त्रोंसे सुसज्जित छोटे राजाका प्रवेश।]

छोटे राजा : [एकाएक प्रवेश करते ही]
कुछ नहीं, मैं नहीं चाहता

मत दो मुझे यह सम्बोधन ।
छोटे राजा, लघु भ्राता
जो लघु है, छोटा है
वह तुम्हारे लघु मनकी उपज है
मैं नहीं हूँ वह ।
मैं जो हूँ, वह रहूँगा
उसका साक्षी सिंहासन रहेगा ।

राजा : यह सिंहासन !
जो छाया है, आकृति है
यह क्या साक्षी रहेगा !

छोटे राजा : जब मेरा अभिषेक होगा
इस सिंहासनपर
फिर मैं देखूँगा
कौन लघु है !

राजा : तुम आवेशमें हो
क्या करूँ तर्क तुमसे

[कहते-कहते राजा अन्तःपुरकी ओर ओझल हो जाते हैं ।]

छोटे राजा : जो कायर है
यह सिंहासन उसका नहीं है
जो धर्म समझाता है
उसका भी नहीं है ।

केवल उसका है
जिसमें निजत्व है
अधिकृत है जो
परम्परासे
पितासे, पितामहसे ।

[कहते-कहते दूसरी ओर प्रस्थान ।]

प० सैनिक : सुनो···सुनो एक बात याद आई !

[दूसरा सैनिक बंद ओठोंपर अँगुली रखकर मना करता है]

शी······शी···ऽऽ···ऽ
अभी मत बोलो !

[दोनों सैनिक चुपचाप पहरा देने लगते हैं, क्षण भर बाद छोटे राजाका पुनः प्रवेश ।]

छोटे राजा : क्षण भरके लिए भी
पहरा शिथिल नहीं होगा
यह सिंहासन मेरा है
केवल मेरा
पिताने मुझसे मृत्यु-शय्यापर कहा था—
'मेरे सिंहासनके अधिकारी तुम हो
मैं मनोनीत करता हूँ तुम्हें
अपना उत्तराधिकारी इस नगरीका ।'

[एक क्षण रुककर]

कैसा वह राजा, जो कभी
सिंहासनपर बैठा ही नहीं।

[बढ़कर सिंहासनपर बैठ जाता है। दोनों सैनिक वहाँसे चले जाते ।]

छोटे राजा : [सिंहासनसे चीख़कर] प्रतिहारी !

[दोनों सैनिकोंका प्रवेश]

छोटे राजा : पहले झुककर अभिवादन करो !

[दोनों झुक जाते हैं।]

छोटे राजा : क्षमा माँगो !
प० सैनिक : क्षमा।
छोटे राजा : विना किसी आज्ञा
क्यों हटे पहरेसे ?
दू० सैनिक : जब राजा सिंहासनपर
फिर भी पहरा सिंहासनका ?
छोटे राजा : अच्छा क्षमा किया
जाओ पहरा दो।

[दोनों सैनिक चुपचाप पहरा देने लगते हैं।]

छोटे राजा : [गर्वसे] उस दिन मैं
तुम दोनोंको स्वर्णसे ढँक दूँगा !

जिस दिन इस सिंहासनपर
अभिषिक्त हूँगा मैं
नगरीकी सारी प्रजा
जय-जयनादसे भर देगी व्योमको !
उस दिन मैं नगरीके सरोवरमें
शत-शत दीपक जलाऊँगा
स्वर्ण कलशोंमें रत्न भर-भरके
गुप्त दान दूँगा सरोवर देवताको !

[सिंहासनसे उतरकर आह्लादसे घूमने लगता है और बार-बार यही गुनगुनाता है ।]

जिस दिन इस सिंहासनपर
अभिषिक्त हूँगा मैं'...

राजा : [एकाएक प्रविष्ट हो] क्या कहा, अभिषिक्त होगे !

छोटे राजा : वह तो हूँ ही स्वयं मैं
अभिषिक्त मुझे पिता कर गये हैं
मैं राजा हूँ
सिंहासनसे मैं ही संपृक्त हूँ
यह सिंहासन तुमसे
आज तक अछूता है ।

राजा : फिर अभिषेक कैसा ?

छोटे राजा : वही अभिनय, जैसे तुमने किया था,
नगरीके प्रजाके बीच

और मैं चुप देखता खड़ा था
तब शक्ति कम थी मुझमें
मेरी मुट्ठी भिंचकर रह गई थी।
स्वर जिह्वामें तड़पे थे
अब समय आ गया है
जो प्राप्य है, अधिकृत है
उसे अविलम्ब ले लूँगा मैं।

[राजाको हँसी आ जाती है।]

राजा : मैं तो कुछ भी नहीं हूँ
सब कुछ प्रजा है।
उसने मुझे केवल प्रतिनिधि चुना है,
ले लो प्रजासे···

छोटे राजा : सावधान !···व्यंग मत करो !

[एक ओर जाता हुआ]

जो व्यथा मनमें है, मनमें रहेगी
कथा क्यों बनाऊँ मैं···।

[अदृश्य हो जाता है।]

राजा : [चिन्तासे] पता नहीं किस निर्ममने
किस अमानवीय क्षणने
किस मनोबलसे
निर्मित किया था

सिंहासनको ।
जिस चेतनने इस जड़की
कल्पना की होगी,
सचमुच वह घोर शत्रु था
मानवका···।

[अन्तःपुरकी ओर जाते हुए]

सचमुच इस जड़में
चेतनने···
युग-युगके लिए
अपनी पराजयका···।

[कहते-कहते अदृश्य हो जाते हैं, दोनों सैनिक चुपचाप टहलते रहते हैं ।]

प० सैनिक : [कुछ क्षणों बाद] सुनो, मुझे तो नींद आ रही है !

दू० सैनिक : तुम्हें आ रही है ?
मुझे तो आ चुकी है ।

[हँस पड़ता है ।]

तुम कुछ कहना चाहते थे
कहो, कहो न
कब तक चुप रहोगे !

प० सैनिक : जब तक यह सिंहासन रहेगा यहाँ ।

दू० सैनिक : लेकिन रक्षा किससे ?

प० सैनिक : यह तो वह भी नहीं जानता
जो सिंहासनपति है।

[रुककर]

तभी हमें नींद आ रही है
क्योंकि, वह सच
जो सतत जगाता है,
हमें क्या, हमारे अधिपतिको भी
अब तक नहीं मिला।

दू० सैनिक : [एकाएक बीच ही में]
चुप, चुप
कोई आ रहा है कहीं !

प० सैनिक : कोई नहीं
पदचापसे लगता है
अनेक आ रहे हैं।

[दोनों चुप हो जाते हैं, छोटा राजा अपने संग दो अन्य सैनिकोंको लिये बहुत तेज़ीसे प्रविष्ट होता है।]

छोटा राजा : [आज्ञा स्वरमें] सुनो !
निकलो यहाँसे !!

[दोनों सैनिक चुपचाप जाने लगते हैं।]

चले जाओ !
अब ये दो नये सैनिक
रक्षा करेंगे मेरे सिंहासनकी ।

[दोनों नये सैनिक चुपचाप पहरा देने लगते हैं ।]

वह राजा कैसा
जो सिंहासनपर बैठा ही नहीं !

[बढ़कर सिंहासनपर बैठ जाता है ।]

मैं ही हूँ राजा इस नगरीका
सुनो राजाज्ञा मेरी
तुम इसी भाँति पहरा दो
फिर नई आज्ञा मिलेगी ।

[तेजीसे भीतर चला जाता है, दोनों नये सैनिक स्वयं डरे-डरेसे चुपचाप पहरा देने लगते हैं ।]

प० सैनिक : पहलेके वे सैनिक
बिना कुछ बोले ही चले गये
हम कुछ उनसे ही पूछ लेते !

दू० सैनिक : पर देखीं मैंने उनकी भुजाएँ
आग्नेय आँखें
मुद्रा समूची
जिनमें मूक प्रतिहिंसा जल रही थी ।

प० सैनिक : ओह तभी वे
टकराये थे देहरीमें ।

दू० सैनिक : [सहसा स्वरसे संकेत करता है ।]
चुप रहो,
आ रहा है कोई

[दोनों चुप घूमते रहते हैं, छोटे राजाका प्रवेश]

छोटे राजा : [रहस्य-स्वरसे] सुनो-सुनो !
पास आ जाओ,
सारी स्थिति देख ली है मैंने
सो रहा है राजा
बेसुध सो गया है
जाओ, अविलम्ब हत्या करो ।
मैं यहाँ बैठा हूँ
जाओ···रुको नहीं
सोचो नहीं ।

प० सैनिक : [दूसरेसे] पानी कहीं नहीं !

छोटा राजा : क्यों प्यास लग आयी ?

दू० सैनिक : नहीं प्यास नहीं
फिर भी पानी !

प० सैनिक : हाथ धोनेको ।

दू० सैनिक : गंदे हाँथ !

छोटा राजा : [क्रोधसे] जाओ ! यह खड्ग देखो मेरा ।

[जाने लगता है]

प० सैनिक : [डरसे चीख़कर] चूहा, चूहा ।

दू० सैनिक : नहीं, नहीं, कीड़ा कोई
छिपकलीके मुँहमें !

प० सैनिक : छिपकली छोटी
कीड़ा बहुत बड़ा ।

छोटे राजा : [सावधान करते हुए] बोलो नहीं

[दोनों सैनिक अन्तःपुरकी ओर अदृश्य हो जाते हैं, छोटा राजा भी खड्ग सँभालकर कुछ क्षणोंतक उन्हें देखता रहता है ।]

छोटा राजा : [अपने-आपके आवेशमें]
देख लूँगा कल प्रातःकाल
इस सिंहासनपर बैठकर दिखा दूँगा
सैन्य शक्ति जिसमें है
बल-सत्ता है जिसमें
सब सिद्धि उसमें है !
वही तथ्य निर्माता है !!

[कहते-कहते वह अन्तःपुरकी ओर अतुल जिज्ञासासे देखने लगता है, कुछ ही क्षणों बाद

पृष्ठभूमिमें एक तीखा स्वर खिंचता है—'सावधान' और उसी तीव्र गतिमें राजाका प्रवेश । देखते ही छोटा राजा खड्गसे भयानक वार करता है ।]

राजा : [वार बचाकर] निर्बल द्रोही ! सावधान !
सावधान !!

छोटा राजा : [आवेशमें] मैं लेकर रहूँगा प्राण !

[निहत्थे राजापर फिर खड्गसे आक्रमण करता है ।]

राजा : [वार बचाकर छोटे राजाको पकड़ लेते हैं और उसका खड्ग छीन लेते हैं ।]

[कटुतासे] हत्यारा कहींका !
विश्वासघाती !!······

छोटा राजा : [काँपता हुआ पर क्रोधसे]
अगर तू सत्य है
तो निर्णय कर ले आज
शक्ति किसमें है !

राजा : शक्तिका निर्णय,
अभी शेष है क्या ?
मैंने छीन ली है तेरी शक्ति
देख खड्ग अपना

छोटा राजा : मेरी शक्ति !
अभी निर्णय करूँगा ।

[आवेशमें घूमकर सिंहासनके पीछेसे दो खड्ग निकालता और उन्हें दोनों हाथोंमें ग्रहणकर राजा-पर टूटता है ।]

छोटा राजा : सत्यका निर्णय
केवल युद्ध देगा !

राजा : कुटिल दानव
युद्ध तू क्या करेगा ?
देख ली है मैंने तेरी
बर्बर क्रूर शक्ति !

[दोनोंमें आक्रमण-प्रत्याक्रमण होते हैं, छोटा राजा अपने खड्गोंकी दुगुनी शक्तिसे राजाके खड्गको टुकड़े-टुकड़े कर देता है ।]

राजा : [कटु आवेशमें] निहत्था हूँ
तो क्या हुआ !
दया मत दिखा मुझे
वह खड्ग मेरा नहीं था
तेरा था ।
तूने द्वन्द्व युद्धकर

अपने आपको ही टुकड़ोंमें बाँट दिया !
मैं नहीं टूटा
मैं सम्पूर्ण हूँ !
खड्ग तेरा टूटा,
तू टूटा
मैं निहत्था हूँ तो क्या—
सम्पूर्ण हूँ मैं !

छोटा राजा : [वार करता हुआ] वाचाल
ले कट जा खंड खंडमें !

[राजापर आक्रमण करता है, राजा उन आघातों-के बीचसे निकलकर छोटे राजाको अपनी बाहोंमें कसकर इस तरह आकाशमें उठा लेते हैं जैसे किसी खिलाड़ीके हाथोंमें कन्दुक आ गया हो ।]

राजा : बोल, क्या करूँ तेरा !
बोल योधा
क्या करूँ तेरे स्वत्वको !
कहाँ पटकूँ तुझे
तू स्वयं टुकड़ोंमें बँटा है,
डर है, तू बिखर जायेगा
सारे भुवनमें—
उस विषकी तरह
जिसमें गति नहीं है

केवल मृत्यु ही मृत्यु है

[क्रोधसे]

बोल क्या करूँ तेरा
कब तक शून्यमें उठाये रहूँ
तू इस धराका नहीं
न तू गगनका है—
बोल फिर क्या करूँ तेरा !

[विराम]

ले सिंहासन पर पटकता हूँ तुझे

[शून्यसे सिंहासनपर पटक देते हैं।]

ले तेरी गति यही है
लिप्सा यही थी तेरी

[उसे देखते हुए]

क्यों अब तो संतुष्ट है न !

[चुपचाप सिंहासनके सामने घूमते हुए, जैसे किसीकी प्रतीक्षा हो।]

राजा : [निश्वास भरकर] जा मैंने अभिषिक्त किया तुझको।

[बाहरकी ओर धीरे-धीरे बढ़ते हैं।]

माथे पर अपना बोझ
प्राणोंपर सबका बोझ
आँखोंमें उनके बोझ
जिन्होंने चुना था मुझे
जिन्होंने बनाया मुझे !
जिन्होंने जन्म दिया,
जिन्होंने कर्म दिया।
और मनपर उनका बोझ
उन सबका बोझ
जिनसे आसक्ति है, पराजय है
बन्धन है······।

[राजा बाहर अदृश्य हो जाते हैं। सिंहासनपर छोटा राजा बिलकुल अचेतावस्थामें पड़ा हुआ है। उसी स्थितिमें एक ओरसे छिपे हुए वही दो सैनिक निकलते हैं, जिन्हें छोटे राजाने निकाल दिया था। वे धीरे-धीरे बढ़कर सिंहासनके पास आते हैं और छोटे राजाकी हत्या करना चाहते हैं, उसी क्षण किसी स्त्री-स्वरमें एक तेज ध्वनि आती है—सावधान

सावधान !

और उसी समय अदृश्य हुए बड़े राजाकी रानीका (राजमाता) का प्रवेश होता है।]

राजमाता : [बढ़ती हुई] डरो नहीं
मत भागो
मैं वह रानी
जिसका महराजा
अभी-अभी महल त्यागकर चला गया।

[और आगे बढ़ आती है।]

रख लो कृपाण अपनी
छिपा लो इन्हें

[सिंहासनकी ओर आवेशमें देखती खड़ी रह जाती है।]

प० सैनिक : [घुटने टेककर] राजमाता !
महाराजा चले गये वनको,
सब कुछ त्यागकर चले गये !

[राजमाता निःशब्द रो पड़ती है।]

दू० सैनिक : हम बहुत रोये
बहुत रोका उन्हें
पर वे चले गये
वन-पर्वत-गिरि-गुहाको
एकाकी लाँघते चले गये।

प० सैनिक : कौन रोक सकता था

उनकी संकल्प-गतिको
सत्यके वेगको
कौन रोक सकता था !

प० सैनिक : झूठा यह राजा
तबसे अचेत यहाँ सोया है ।
जैसे ही सुधि होगी इसे
अपनेको सचका राजा बना लेगा यह,

दू० सैनिक : [क्रोधसे फिर कृपाण निकालकर झपटता है ।]
मिटा दूँगा इस रेखाको ।

राजमाता : [रोक लेती हैं ।] यह रेखा जैसी भी हो
जो हो
निर्मित है उन्हींसे, जो चले गये !

[रो पड़ती हैं ।]

राजमाता : [अपनेको बाँधती हुई]
चले गये राजा मेरे संन्यासी बन
मैंने पथ नहीं रोका ।

[विराम]

मैं खड़ी देखती रह गई
वे आँखोंमें चलते गये, चले गये ।
मेरे नयनमें वह अभी चल रहे

पगध्वनि आ रही है प्राणोंमें
वे कह रहे हैं, मैं गा रही हूँ—
माथेपर अपना बोझ
प्राणोंपर सबका बोझ
जिन्होंने चुना था मुझे
उन सबका बोझ,
जिनसे पराजय है
आसक्ति है,
बन्धन है।

दो० सैनिक : [एक स्वरमें] हम हत्या चाहते हैं इसकी
हमें प्रतिशोध लेना है।

दू० सैनिक : यही वह कारण है
मूल है उस विषका
जिसने विरक्ति दे दी उन्हें।

दो० सैनिक : राजमाता !
हम प्रतिशोध लेंगे।

राजमाता : किससे ?

दो० सैनिक : इसीसे।
जो सिंहासनपर अचेत है।

राजमाता : मत दो चुनौती मुझे
नहीं तो वह सब कुछ टूटकर बिखर जायेगा,
जिसे नगरीके राजाने बाँधा है, जोड़ा है

जिसे सिंहासन दिया है
और असमय अपनेको त्यक्त कर लिया है।

[शून्यमें देखने लगती हैं।]

यदि हम प्रतिशोध लेंगे
तो पहले हम उस राजाके
सत्यघाती होंगे,
जिसने सब कुछ त्याग दिया।

[सिंहासनपर पड़े हुए राजाको धीरे-धीरे सुधि होती है। वह भयत्रस्त हो सबको इस तरह देखता है, जैसे लोग उसके प्राणघातक हैं।]

राजमाता : [दोनों सैनिकोंको आगे बढ़ाती हुई,]

चलो हम आगे बढ़ें
हम जनता हैं,
यह नगरी, जिसकी राजमाता मैं हूँ
और वह पुरुष, प्रतिनिधि, जननायक,
मेरे सीमन्तका सुहाग,
हमें देकर गया है
जो भाव, जो शब्द
जो उत्सर्ग
हम रक्षा करें उसकी।

[सैनिकोंके संग राजमाता अदृश्य हो जाती हैं और अन्तमें यह शब्द वातावरणमें भर जाता है।]

यही प्रतिशोध है हमारा
यही वह भक्ति है
विनय है,
जो समर्पित जननायक को ।

[पृष्ठभूमिमें यही शब्द समवेत स्वरसे सैनिकों द्वारा दुहराया जाता है ।]

छोटा राजा : [सिंहासनसे उतरकर सशंकित इधर - उधर झाँकता है ।]

[अपने आप]

यह सब क्या है ?
कैसा अद्भुत स्वप्न है
जिसे देखकर उठा हूँ ।

[एकाएक उन दो सैनिकोंका प्रवेश जो राजाका वध करने गये थे ।]

दो० सैनिक : [अभिवादनसे] यह स्वप्न नहीं
सत्य है राजन्

छो० रा० : सत्य है ?

[अट्टहास करता है ।]

छो० रा० : मैं नगरीका राजा
मेरी राजसत्ता !

[गर्वसे हँसता है ।]

लो पुरस्कार
लो पुरस्कार !

[सिंहासनके नीचेसे धनराशि निकाल-निकालकर सामने बिखेर देता है। उसी क्षण पृष्ठभूमिमें कोलाहल उभरता है और राजा भयसे घबड़ाने लगता है ।]

छो० रा० : [जैसे भागता हुआ] मेरा खड्ग कहाँ है ?
कहाँ है मेरा खड्ग ?

[सिंहासनके समीप पड़े हुए दोनों खड्गोंको उठा लेता है । कोलाहल बिलकुल समीप चला आता है । दोनों सैनिक भाग जाते हैं । छोटा राजा, सारे दृश्य भरमें पागलोंकी भाँति ढूँढ़ता हुआ]

छो० रा० : मैं नगरीका राजा
मेरा मुकुट कहाँ है ?
मेरा मुकुट
मेरा मुकुट !

[सहसा मंचका सारा प्रकाश लुप्त हो जाता है। और उस गहन अंधकारमें फिर उसी संन्यासीका गम्भीर स्वर सुनायी देता है ।

एक सुधि और जल रही है
मन कहता है तार-तार कर दूँ
और मुक्त हो जाऊँ उस सुधिसे—

[विराम]

बहुत गहरी चोट है
कहीं अंतसमें
बहुत गहरे, बहुत गहरे
कोई घाव है
जो कहीं दीखता नहीं
पर दर्द है मरन-सा !

[सहसा बहुत ऊँचे स्वरमें कहता है]

आओ चलें उस अंतसमें
दर्दका अन्तराल······।

[धीरे-धीरे मंचपर प्रकाश लौट आता है। राज-प्रासादका वही प्रकोष्ठ । अन्तःपुरसे छोटे राजा, (और अब नगरीके राजा) का प्रवेश। राजा सिंहासनपर जैसे ही बैठता है, उसी समय दूसरी ओरसे पुरोहितका प्रवेश]

पुरोहित : [प्रविष्ट होते ही] जै हो राजन् !
मंगल हो !!

राजा : [चिन्तामें] मैं शंकित
कुछ चिन्तित हूँ पुरोहित !
पुरोहित : आप शंकित !
असंभव
आश्चर्य है यह !
राजा : मैं नगरीका एकछत्र राजा
मेरे शासनके कितने वर्ष बीते
अपूर्व सत्ता मेरी,
फिर भी एक सत्य इसके परे है—
नगरीका एक भाग अब भी
श्रद्धा दे रहा है उसी राजाको
संन्यासीको !
पुरोहित : [बीच हीमें] इसीमें इतनी चिन्ता !
मैं कहूँ क्या है।
इसमें क्या है ?
दमनकी शक्ति है जिसमें···।
राजा : यह सत्य दमनका नहीं
मेरी सैन्य शक्तिसे,
यह कुछ ऊपर है
मेरी शक्तिसे कुछ परे है।
ऐसी क्रान्ति है यह
जो ठण्डी है,
ऐसी मनोशक्ति है यह

जो अदृश्य है
पर निश्चय ही क्रान्ति है इसमें ।

पुरोहित : यह असम्भव राजन् !

राजा : पर सम्भव भी है पुरोहित !

पुरोहित : वह संभव-असंभव
उस ब्रह्मके हाथमें है
जिसके आप प्रतिनिधि हैं
आप दैव-अधिकृत हैं
क्या करेगी वह मुट्ठी भर प्रजा !

राजा : ठीक है, पर हमें तो स्वत्व-रक्षा हेतु
आगे देखना है ।

पुरोहित : उचित है राजन् !

राजा : शासितकी बुद्धि अपनी नहीं है ।
हमने दी है उन्हें
नीतिके दर्शनमें रँगकर
तभी वह प्रजा है,
हम शासक हैं
पर जिस क्षण शासित
स्वप्रज्ञासे जगकर
अपनी बुद्धि पायेगा,
फिर वह दर्शन भस्म कर देगा हमें ।

पुरोहित : पर ऐसा होगा क्यों ?

राजा : पुरोहित सुन लो

नीति तिनका है
अग्नि दर्शन है ।

[पुरोहितका माथा चिन्तासे झुक जाता है ।]

राजा : यही वह नग्न सत्य है
जो मथ रहा है मुझे ।
पुरोहित : राजन् इस मन्थनसे
निश्चय ही कुछ प्राप्त होगा ।
राजा : सो तो पा गया हूँ पुरोहित
ऐसा मौलिक सत्य पा गया हूँ
जिसमें सिद्धि-ऋद्धि दोनों हैं
आगत क्या, अनागत भी
जिसमें सदा रक्षित है ।
पुरोहित : धन्य है
जै हो सदा !
राजा : मैनापुरीके राजासे
मैं सैन्य सन्धि कर रहा हूँ
उसकी अजय सैन्य शक्ति
मेरी शक्ति होगी ।
पुरोहित : जय हो, मंगल हो !
राजा : नीतिके पीछे
जब ऐसी सैन्य शक्ति होगी
तब इस सन्धिसे वह दर्शन उगेगा

जो शेष सब दर्शनको
निगल लेगा ।

पुरोहित : सत्य हो !
जय हो !!

राजा : सोचो पुरोहित,
मैं निरंकुश, सर्वोच्च सत्ताधारी
और कितनी कम सैन्य शक्ति मुझमें !
सोचो पुरोहित !

पुरोहित : क्यों नहीं, क्यों नहीं !

राजा : मुझे वे दिन याद हैं पुरोहित,
वह दृश्य कभी भूलता ही नहीं
जब सिंहासनपर अभिषिक्त हो रहा था मैं
और नगरीकी आधी प्रजा
दे रही थी चुनौती मेरी सैन्य-शक्तिको !

पुरोहित : मुझे भी याद है वह दृश्य
तथा एक सत्य और भी याद है
उस बार राजकुमारी जब
सखियों संग, सरोवरके उस पार
देवताको दीप दान करने गयी थी···

राजा : [बीच हीमें] छोड़ो उस दृश्यको पुरोहित !

[उसी क्षण सहसा राजकुमारीका प्रवेश]

राजकुमारी : [प्रविष्ट होते ही]

छोड़ो क्यों ?
उसे भी निश्चय कहो
वह भी नगरीका सत्य था एक अपना ही
जिसकी परिधिमें जीवन बँधा था
वह एक ऐसा क्षण था
जो अमर रहकर सदा देगा
भाव हमको
स्वप्न नगरीको ।

राजा : चुप रहो बेटी !

पुरोहित : हाँ, शान्त हो !

राजकुमारी : नहीं, मैं कहूँगी
निश्चय कहूँगी···
तब सरोवरके उस पार
गढ़ीके राजाने छिपकर
राजबलसे मेरा डोला···

राजा : [कड़े स्वरमें]
चुप रहो, राजकुमारी !

राजकुमारी : मेरे डोलेको उठवा ले जा रहा था
उस समय अद्भुत युद्ध
किसने किया था ?
इस नगरीकी वही मुट्ठीभर प्रजाने
जिनका नायक

एक अनुपम पुरुष था ।
केवल एक पुरुष
जिसने निज पौरुषसे
प्राणोंकी बाजी लगाकर
मुक्ति दी थी मुझे ।
वरना मैं उठ गई होती गढ़ीमें
यदि वह नायक न होता ।

राजा : चुप रहो !

पुरोहित : अमर्यादित सत्य मत बोलो !

राजकुमारी : सत्य ही मर्यादा है,
जो असत्य है
वह कभी मर्यादित नहीं ।

राजा : [क्रोधमें] अच्छा जाओ
चली जाओ यहाँसे,
राजकुमारी···हम कुछ···

राजकुमारी : [बीचमें] हाँ, व्यस्त हैं नीति-निश्चयमें
यही न !
पर मैं भी सुनूँगी उसे
कुछ सत्य मैं भी लिये हूँ ।

राजा : [आवेशसे] राजकुमारी !
अनधिकार चेष्टासे
वाचाल हो रही हो तुम !

[राजा पुरोहितको संग लेकर जाने लगता है ।]

राजा : पुरोहित !
चलो, हमीं चलें यहाँसे !

[दोनोंका प्रस्थान, दृश्यमें अकेली राजकुमारी रह जाती है ।]

राजकुमारी : [चिन्तासे] राजा !
पर मैं अकेली नहीं हूँ
भाव है मुझमें
द्वन्द्व है अनेकों
मैं घिरी हूँ जैसे
आजानबाहुओंमें ।

[सहसा राजमाताका प्रवेश]

राजकुमारी : [देखते ही] राजमाता !
राजमाता !!

[गलेसे लग जाती है और सिसककर रो पड़ती है ।]

राजमाता : मत रो बेटी !
क्या है ?
बता मुझे
आश्वस्त हो !

राजकुमारी : [रुँधे कण्ठसे] नगरीका राजा

मेरा पिता
मैनापुरीके राजासे
सैन्य-सन्धि कर रहा है ।

[रो पड़ती है ।]

राजमाता : मैंने भी सुना है
यह भयावह सत्य !

राजकुमारी : इतना ही सत्य नहीं
यह तो अधूरा है ।

राजमाता : [भरे कण्ठसे] रोओ नहीं !

राजकुमारी : राजा मैनापुरी संग
मेरा पिता
ब्याह रच रहा है मेरा !

राजमाता : [पीड़ासे]
आह राजकुमारी !

[राजमाता बेहोश हो जाती हैं, राजकुमारीका आर्तमुख, सैनिक वेशमें उसी क्षण एकाएक पुरुषका प्रवेश]

पुरुष : [सम्हालता हुआ] यह नहीं होगा !
कभी नहीं
यह असंभव है !!

[राजमाताको बुलाता हुआ]

सुधिमें आओ राजमाता !
मैं दे रहा हूँ वचन
चरणोंमें तुम्हारे
प्रतिश्रुत हो रहा हूँ
राजमाता,
यह नहीं होगा !
मैं हूँ,
यह नहीं होगा !

[राजमाताको धीरे-धीरे सुधि होती है]

राजमाता : कौन ?
पुरुष !
तुम्हींने जगाया
सुधि दी तुम्हींने !

पुरुष : हाँ, राजमाता !
इन चरणोंपर मेरा सिर
मेरे शब्द ।
राजकुमारीके चरणोंपर
मेरे प्रान
नगरीकी श्रीपर
मेरा सत्य !

राजमाता : रुको
मैं अभी आयी,

मंगल तिलक दूँगी
माथेपर
प्राणोंमें
प्रान भर दूँगी
अब जी चुकी मैं !

[राजमाताका प्रस्थान]

पुरुष : [आगे बढ़कर] राजकुमारी !
माथा उठाओ
चितवन दो मुझे
वे आँसू मेरे हैं
वे भारी पलकें
मेरी हैं
मैं हूँ वह !

राजकुमारी : मेरे प्रान !
पूजन करूँगी
आओ, पर्व है आज
मेरे नयनका ।
मेरे सूर्य,
लो, मैं स्वयं अर्घ्य हूँ,
समर्पित हूँ तुम्हें
शत-शत चाँद तारे
अर्पित हैं

मेरे अन्तस्‌के ।

[समीप आती हुई]

आँचलके दीवासे
पलकोंके गंगाजल
माथेके घूँघटसे
लो, आरती है मेरी तुम्हें !

[उसी क्षण मंगल थाल लिये राजमाताका प्रवेश]

राजमाता : शुभ हो,
लो मंगल तिलक मेरा !
शुभ हो,
जय हो,

[पुरुषकी ओर बढ़कर]

माथे तिलक
चरनपर दूब अक्षत
बाहुँमें चन्दन
व्योममें शंख ध्वनि
मंगल गान !

[पृष्ठभूमिमें शंख-ध्वनि]

राजकुमारी !
आँचल दो मुझे
कर दो, माथा दो—

सीमंत दो मुझे !

[उसी क्षण आवेशमें पुरोहितके संग राजाका प्रवेश, राजा कृपाणसे मंगल-थालपर झपटकर उसे चूर-चूर कर देता है ।]

राजा : यह नहीं होगा
यह नहीं होगा
होगा वही
जो मैं करूँगा !

[आज्ञासे] प्रतिहारी !

[सैनिकोंका प्रवेश]

राजा : इन्हें बन्दी करो !

[पुरुष कृपाणसे सबकी रक्षा करता है ।]

[पर्दा]

तीसरा अङ्क

•

[मंचपर सूखे सरोवरका वही दृश्य । सरोवर-तीर, वही संन्यासी ठूँठके सहारे टिका हुआ है ।

प्रयत्न करके उठता है, और सरोवरकी ओर खड़ा देखता हुआ, ऊँचे स्वरसे बार-बार यही दुहराता है ।]

जो झूठ है
असत् है
सत् है
मैं ही अंग हूँ उसका,
मैं ही अंग हूँ उसका !!

[टहलकर]

जो गत है
विगत है
मैं ही अंग हूँ उसका !
मैं ही अंग हूँ उसका !!
तभी जो अनागत है
मैं ही अन्तस् हूँ उसका

मैं ही अन्तस् हूँ उसका !!

[पीछेसे वृद्धका प्रवेश]

वृद्ध : संन्यासी।
अब मुझे ज्ञात हुआ !

[रुक जाता है]

संन्यासी : [चुप है]

वृद्ध : कह दूँ
लगता है
तुम्हीं मूल हो सबमें !

संन्यासी : [चुप है]

वृद्ध : निर्बलता
स्वार्थ
निजपरता
यथार्थसे
निष्क्रय बनाकर
और खींचकर कहीं
ले गई तुम्हें
उस गुफामें
अहंके
जिसके सब द्वार
बन्द थे युगोंसे।

[लौटता हुआ]

अब क्या होगा ?
टीला बन जायगा यह नगर
लगता है सब निःशेष होगा ।

[एकाएक पागलकी हँसी, और उसका प्रवेश]

पागल : [प्रविष्ट हो] क्यों नहीं ! केवल मैं बचूँगा
घूमूँगा सदा टीलेपर
और······
इतिहास दूँगा ।

[हँसता है]

कहूँगा सदा—
सब पागल थे
विक्षिप्त थे सब
स्वार्थी थे
अहंकारी
निर्बल थे सब !

[हँसी बिखेरता हुआ एक ओर चला जाता है।]

संन्यासी : प्यासने
सत्यको भी
पागल कर दिया !

वृद्ध : कौन है उत्तरदायी ?

संन्यासी : हम सब हैं !

[वृद्ध दृश्यसे ओझल होने लगता है, संन्यासी 'सुनो वृद्ध, सुनो वृद्ध', पुकारता हुआ उसके पीछे चला जाता है। मंच सूना हो जाता है। धीरे-धीरे दृश्यपर गहरा नीला प्रकाश फैलने लगता है, और सूखे सरोवरकी छातीपर यह स्वर तैरकर उभरता है।]

मिलन होय एक बार
पलकन धोऊँ पग पिया,
कर सोलह श्रृंगार
चन्दन चिता सँवारके।
निज कन्ताके देश
पिया मिलन चकई गई,
धर जोगिनका भेष
मैं चकई बिनु पंखके।

['पलकन धोऊँ पग पिया' यह स्वर बार-बार उभर कर खोता रहता है, जैसे कोई प्रतिध्वनि हो। कुछ क्षणों बाद राजाके संग पुरोहितका प्रवेश।]

राजा : पुरोहित !

पुरोहित : राजन् !

राजा : इस भटकते स्वरको
सुन लिया ?

पुरोहित : कितनी करुणा है !
राजा : अर्थ भी है ।
पुरोहित : आज दो दिन हो गये
सरोवरके सूनेमें
इसी भाँति,
कोई गाती-डोलती है ।

राजा : [क्रोधित] इस स्वरमें-से

किसी भाँति
अर्थ हर लो पुरोहित !
नहीं तो···!
पुरोहित : कुछ नहीं राजन्
आश्वस्त हों
स्वरसे अर्थ क्या,
मैं पूरे शब्दको ही हर लूँगा ।
राजा : हर लो पुरोहित !
पुरोहित : [बढ़ता हुआ] जा रहा हूँ राजन् !

[पुरोहित सूखे सरोवरकी ओर बढ़ता है, ज्योंही नीचे उतरनेको होता है उसी क्षण अँधेरेमें छिपा हुआ वृद्ध उसके गलेको दबोच लेता है।]

पुरोहित : [भिंचे कण्ठसे चीखकर] राजा, राजा !
वृद्ध : शब्दबेधी !

तू भी चीख़ता है ?

[उसी समय पागलका प्रवेश, जो हँसता हुआ राजाके सामने तनकर खड़ा रहता है ।]

राजा : [क्रोधसे] हट जा सामनेसे !

पागल : कायर राजा
बस मर गया
तेरा पुरोहित !

वृद्ध : [आता हुआ] और मैंने मारा
मेरे वृद्धने !

राजा : [आवेशमें कृपाणसे आक्रमण करता है ।]
सावधान वृद्ध !

वृद्ध : राजा !
बस, एक शब्द देकर !

[पागल हँसता हुआ दूर चला जाता है ।]

वृद्ध : मैंने पुरोहितकी हत्या नहीं की ।
केवल कण्ठ घोटा मैंने
जानते हो क्यों ?

[विराम]

वह स्वरमें-से अर्थ क्या
पूरा शब्द हरने चला था ।
वह शब्द—

जो भटकती आत्माका,
करुण स्वर है !
तभी घोटा मैंने पुरोहितके दर्पको ।

राजा : चुप हो जा !

[कृपाण चलाता है ।

वृद्ध : [इस आक्रमणसे भी बचकर]
राजा !
दो बार उठ चुका कृपाण तेरा !

राजा : [आवेशमें] ले इस बार
देखता हूँ तुझे !

[राजा क्रोधमें वृद्धपर टूट पड़ता है । वृद्ध लड़खड़ाकर दायीं ओर अदृश्य हो जाता है । उसी क्षण एक करुण कराह उभरकर खो जाती है । क्षण भर बाद हँसता हुआ पागल आता है ।]

पागल : दो-दो मर गये
एक वृद्ध था
एक था पुरोहित ।
एक सत्य था
इतना प्रकाशित
जिसमें हम क्या, राजा क्या
संन्यासी भी लुप्त था

[बढ़कर पुरोहितके शवको कन्धेपर लादकर अदृश्यमें कहीं रख आता है ।

पागल　:　[लौटकर] दूसरा झूठ था, इतना झूठ
जैसे पिता हो छलका,
पर सब हिंसक-प्रतिहिंसक थे
सब मरेंगे, मारेंगे
केवल मैं बचूँगा !

[हँसता हुआ एक ओर बढ़ जाता है । क्षण भर बाद फिर उसी करुण स्वरमें, 'पलकन धोऊँ पग पिया', 'पलकन धोऊँ पग पिया' एक ओर नगरीके उन्हीं पाँच व्यक्तियोंका प्रवेश :

प० व्यक्ति :　आज दो दिन हो गये
इस सरोवरमें
कोई गाती डोलती है ।

दू० व्यक्ति :　कितना दर्द है स्वरमें
सुना नहीं जाता ।

ती० व्यक्ति :　नगरीमें लोगोंने
रातको
स्वप्न देखा है यह—
सरोवर भरा है
चाँदनीकी नाव है कोई
सेज है कमल पाँखुरीकी

उसपर बैठी है रानी
जिसके अंकमें
राजा सो गया है ।
रानी गा-गाकर जगाती
रो-रो पुकारती
पर राजा सो गया है
सो गया है ।

चौ० व्यक्ति : पता नहीं क्या है !
कौन है
सारी नगरीमें
गली-कूचे आँगन, कोठे-बरोठेपर
हर क्षण डोलती है ।

पाँ० व्यक्ति : नगरकी स्त्रियोंने
सुना है—
सन्नाटेमें फुसफुसाकर वह
त्रस्त स्वरसे
कुछ कहती भी है

प० व्यक्ति : संन्यासी कहता है—
राजकुमारीकी वह
भटकती आत्मा है,
जो तबसे हर क्षण
छाई है नगरपर
गाती डोलती है वह

सरोवर पर ।

राजा : [एकाएक प्रविष्ट हो]

संन्यासी पाखण्डी
छद्मभेषी !

[सब चुप देखते रह जाते हैं ।]

उसीने हत्या कराई है
वृद्धकी
पुरोहितकी !

[विराम]

संन्यासी पाखण्डी है
सब छल है उसीका ।

संन्यासी : [हँसता हुआ आकर] मैं पाखण्डी हूँ

तुम सच हो न !
क्यों राजा ?
सरोवर देवतासे क्यों भगे थे ?
सत्य कायर होता है
क्यों राजा ?
यह सूखा सरोवर
वे सैकड़ों शिशु
बूढ़े असहाय—
जो छटपटाकर दम तोड़ चुके

और जो तोड़ेंगे
सब झूठे हैं
क्यों राजा ?
यह श्मशान-सी नगरी
राजकुमारीकी भटकती आत्मा
सब स्वर, आवाज़ें, करुण चीख़ें,
झूठी हैं
क्यों राजा !

[पृष्ठभूमिमें फिर वही स्वर गूँजता है ।]

पलकन धोऊँ पग पिया
कर सोलह शृङ्गार,
पलकन धोऊँ पग पिया
चन्दन चिता सँवार
पलकन धोऊँ पग पिया !

संन्यासी : सुन लो राजा !
सुन लो भटकती आत्माका गीत
पहचान लो स्वर···

राजा : यह स्वर नहीं, छल है तुम्हारा !

न०के लोग : [एक स्वरमें] शाप है सरोवर देवताका ।

संन्यासी : लेकिन शाप क्यों है ?

[सब चुप मौन रह जाते हैं । सरोवरके सूखेसे राजकुमारीकी आत्माका प्रवेश—नीले झिलमिले

वस्त्रमें ढँकी, एक अनुपम सुन्दर आकृति, जिसपर मानो स्वप्नके तारे सम्मोहनकी रूपहली किरनें बरस रही हैं ।]

आत्मा : [सहसा प्रविष्ट हो] सब चुप रह गये
मैं दूँगी उत्तर
सरोवरमें भटकती आत्मा हूँ मैं !

[सब डरसे भागनेको होते हैं ।]

संन्यासी : नहीं, भागो नहीं !

सब : [आपसमें डरसे] भाग गया नगरीका राजा !

आत्मा : [हँसती हुई] मुझे देखकर

संन्यासी : कितने कटु आवेशमें भगा है !

आत्मा : मैं भटकती आत्मा हूँ ।
यह नगरी गत दिवसकी प्यासी
और मैं,
वर्षों-युगोंकी प्यासी !

[सैनिक सहित सहसा राजाका प्रवेश]

राजा : [आवेशमें] पकड़ लो, बाँध लो इसे !
बन्दी करो !

[संन्यासीके अतिरिक्त सब दौड़ते हैं, पृष्ठभूमिमें 'पकड़ो, बाँध लो,' की आवाज़ उभरती है, पर

सबके ऊपर आत्माकी तेज हँसी बिखर जाती है।]

आत्मा : मुझे पकड़ोगे ?
बन्दी करोगे मुझे ?
है किसीमें शक्ति
क्यों राजा ?

[हँसती है।]

तुम पानीके प्यासे
समाज हो, नियन्ता हो
मैं अभिशाप हूँ सबका।

[विराम]

आओ, बढ़ो न
छुओगे मुझे ?

[हँसती है।]

क्या है जो छुओगे मुझे ?
मैं कुछ नहीं हूँ।
सच कुछ नहीं हूँ
मैं तुम्हींमें हूँ
घाव बनकर, औंधा घाव
जहाँ छुओगे मुझे
जरा भी स्पर्श दोगे

सच, अपनेको छुओगे
औंधे घावको।

[पृष्ठभूमिमें कोलाहल उभरता है और क्षण भर बाद एक सैनिक दौड़ा आता है।]

सैनिक : राजन्, राजन्!

राजा : क्या है?

सैनिक : बन्दी हो गया वह पुरुष
शीघ्र चलिए राजन्!

राजा : चलो, जै हमारी!

[तेजीमें राजाके संग सब चले जाते हैं।]

आत्मा : सब चले गये
कितने आवेशमें
क्रोधमें थे सब!
किस तरह मुट्ठियाँ भिचीं थीं!
[रुककर]
संन्यासी
तुम नहीं गये?

संन्यासी : कहाँ जाऊँ!
यहीं हूँ—यही क्या कम है!

आत्मा : [एकाएक दर्दसे कराह उठती है]
आह!

लँगड़ी हो गई मैं !
नगर वालोंने,
राजाने तोड़ दिया
बायाँ हाथ
दाईं टाँग

[चीख़कर]

संन्यासी दौड़ तू !
दौड़कर बचा ले मेरे पुरुषको
देवताको
प्राणको !

[संन्यासी तेजीसे भागता है ।

आह !
किस भाँति यातना दे रहे हैं
मेरे सपनको !
प्रियतमको—
जो चुप है, विक्षिप्त है !

[कराहकर गिर पड़ती है और सिसकती हुई रोने लगती है । कुछ क्षणोंमें बुरी तरहसे घायल, लँगड़ाता हुआ वही पुरुष प्रविष्ट होता है ।]

पुरुष : [पास आकर] राजकुमारी
ओ मेरी प्रिया

जागो !
अब तक रो रही हो !
नहीं, ऐसा नहीं
जागो, देखो मुझे !
मैं आया हूँ, जागो
ओ मेरी प्रिया !

[झुक जाता है ।]

जागो !
नहीं तो छू लूँगा तुम्हें

आत्मा : [जगकर उठ बैठती है ।]

आ गये तुम !

पुरुष : हाँ आ गया
देखो मुझे
सिर उठाओ···!

आत्मा : देखूँ तुम्हें
आह ! कहाँ वे नयन प्रियतम
जिनसे तुम्हें देखूँ मैं !
सब देखती हूँ—
पूरा नगर देखती हूँ
तुम्हारे शरीरके अंग-अंगके
सब घाव देखती हूँ
ओ मेरे सपन

सब चोटें तुम्हारी
सब घाव
सारी यातना
मेरी है, मुझ पर है !
मैं सह-भोगा
सब देखती हूँ
ओ मेरे सपन
पर देख पाती नहीं
केवल तुम्हींको !

पुरुष : मुझसे भी मुख तुम्हारा
अदृश्य है,
ओ मेरी प्रिया !
मैं भी असमर्थ हूँ !!

आत्मा : बोलो, फिर क्या करूँ मैं
आज्ञा दो बताओ फिर
कैसे मिलन हो हमारा !

[कण्ठ रुँध जाता है ।]

तुम्हारे मिलन हेतु
हर क्षण भटकती हूँ
तुम भी भटकते हो
पद चाप सुनती हूँ मैं
श्रवनसे देखती हूँ सदा

पर कभी छू नहीं पाती तुम्हें !

पुरुष : [पास बढ़ता हुआ]

लो, छू लो प्रिये,
आओ !
हम छूलें नयनसे नयनको
आओ !
लो, छू लो प्रिये !

आत्मा : सरोवर पर्य्यंक पर
हर रात
चितवनकी सेजा बिछाती हूँ !
सोलहो शृंगार
आँचलमें दीवा सँजोये
पथ जोहती हूँ।
तुम आते हो
हम मिल नहीं पाते
रोता है चन्दा
दीवा बुझ जाता है
हंस-हंसनि कुहुँकते हैं
कमलसे कुमुदनी कहती है—
रात बीती प्रिये
छू लो मुझे !
छू लो मुझे !!

पुरुष : प्रिये !
उस रात सेजा पर
बाहोंकी छाया
मिली थी मुझे—
उनमें अनमोल भुजबन्द
रत्न जड़ित वलय थे
अणु-अणुसे कमलकी
गन्ध आ रही थी ।
हाथोंमें मेंहदी रची थी
उँगलीमें चन्दनकी बास थी ।
सबपर वीणाके तार थे खिंचे
मैंने चूमी थी तुम्हारी सुधि,
सोया था बाहोंपर
जो छाया थी तुम्हारी
ओ मेरी प्रिया !

आत्मा : ओह !
तभी आँसू थे सेजापर
सब कुछ भीगा था भोरका !
बहुत सोचकर भी
मैं नहीं समझ पा रही थी
क्यों मेरी पायल
मेखला मेरी
बेंदी, कण्ठहार

आँचल-घूँघट
और सीमंतपर
अंगराग चन्दन-सा !
ओह, वे आँसू थे मेरे प्रियतमके
आज मैं भी उन्हें चूमूँगी
भर लूँगी नयनमें
कस लूँगी बाहुओंमें

[आत्मा धीरे-धीरे विलुप्त होने लगती है]

पुरुष : [दर्दसे कराह उठता है]
आह !
तुम फिर शून्यमें मिल गईं
बोलो, ओ मेरी प्रिया
किस पथसे गईं तुम ?

[पुरुष उसी दिशाके शून्यमें अपलक देखता है, जिस ओर राजकुमारीकी आत्मा अदृश्य हुई है ।]

संन्यासी : [प्रवेशकर] प्रियाको
अब मत पुकारो !

पुरुष : क्यों
मैं पुकारूँगा···
हर शब्द, हर साँससे पुकारूँगा

संन्यासी : शी······ऽऽ···
चुप रहो ।

खोजमें हैं नगरवाले
सैनिक कटिबद्ध हैं
बन्दी कर लेंगे फिरसे तुम्हें ।

पुरुष : कर लें
मैं मुक्त हूँ !

संन्यासी : पर वे नहीं हैं ।
हिंसा बन चुकी है उनकी प्यास
प्यासे हैं
घोंटकर अब वे
मानव-रक्त पीने लगे हैं !

[पृष्ठभूमिमें जन-कोलाहल]

संन्यासी : भागो, भागो
भाग जा यहाँसे !
आ रहे हैं वे
भाग जा, भाग जा !!

[संन्यासी पुरुषकी बाँह पकड़कर उसे अदृश्य कर देता है ।]

संन्यासी : आह ! चला गया !
पर चल नहीं पाता !!

[राजाके संग नगरके व्यक्तियोंका प्रवेश]

राजा : [आवेशमें] संन्यासी !

अभियोगी तू है !!
पुरुषसे
उस भटकती आत्मा
सरोवरके देवता—
इन तीनोंसे मिला है तू ।

संन्यासी : [हँसता है] इन तीनोंसे ही नहीं
उन सबसे भी मिला हूँ
उन शिशुओं अबोधों
वृद्धों, अबलाओं और रुग्णोंसे
जो असंख्य मर चुके अब तक प्याससे ।

राजा : [क्रोधसे] चुप रहो !

संन्यासी : पर वे चुप कहाँ हैं
जो प्याससे मर गये
जो प्यासे मरे हैं
वे सदा प्यासे हैं
मृत्यु भी उन्हें
नहीं दे सकी है मुक्ति ।
[रुककर]
वे अब भी घूमते हैं
इस सरोवरके चारों ओर
ओ राजा !
उनसे मिलोगे तुम

मिल लो तुम्हारी प्रजा हैं वे ।
अभागे
मरकर भी प्यासे हैं !

[हँसता है]

पकड़ो भाग गया राजा !

[राजा अपने आपसे डरकर भागता है । मंचपर नगरीके व्यक्तियोंके संग केवल संन्यासी रह जाता है ।]

संन्यासी : नगरीके लोगो
क्या सत्य अब तक नहीं मिला ?
बोलो
बोलते क्यों नहीं ?

प० व्यक्ति : हमें केवल
प्यास याद है ।

संन्यासी : तो प्यास हेतु
पानी चाहिए न !
क्यों ?

दू० व्यक्ति : ओह !
यह तो हम भूल ही गये ।

संन्यासी : कौन अपराधी है
सूखे सरोवरका ?

कारण क्या है ?
क्यों सूखा सरोवर ?

तीo व्यक्ति : राजा केवल नगरीका राजा...

[दौड़कर पगलेका प्रवेश ।]

पागल : उसमें यह संन्यासी भी मिला है
मूलमें यही है ।

[हँसता हुआ कई बार मंचपर दौड़ता है, फिर सामने तनकर ।]

पागल : प्रजाको इसीने दिया धोखा
निष्क्रिय आदर्शोंसे
शान्तिके नामपर
इसीने प्रतिनिधित्व की
चुप-चाप हत्या की !

[क्रोधसे घूरता है ।]

निज त्यागसे इसीने
निरंकुश राजसत्ताको जन्म दिया
मूलमें
इसीने नगरीको धोखा दिया
प्रियके लिए श्रेयको इसीने त्यागा ।

[संन्यासी सिर थामकर बैठ जाता है ।]

तड़प-तड़पकर राजप्रासादमें
राजमाता मर गईं।
नगरीकी रक्षाके नामपर
राजकुमारी बिकनेको हुई।

[तेज हँसी]

त्यक्त
पराजित
निष्क्रिय
अपराधी
अविवेकी
अब संन्यासी बन आये !
जब सूख गई नगरी
गैरिक वसन
धूल राखमें
छिपने चले थे !
और वाक्-शक्तिसे,
सिद्ध करने चले हैं—
सब कारण राजा है !
और निरपेक्ष हैं यह !
झूठे
प्रपंची
स्वार्थी !

[एक ओर जाने लगता है, संन्यासी दौड़कर पागलके चरणोंमें जैसे छिप जाना चाहता है, और इस भाँति दोनों अदृश्य हो जाते हैं ।]

प० व्यक्ति : क्या है ?
कौन है यह संन्यासी ?

दू० व्यक्ति : लगता है यही वह राजा है
जो प्रतिनिधि था नगरका ।

ती० व्यक्ति : जो इस राजाके प्रपंचसे···

चौ० व्यक्ति : [बीच ही में] संन्यासी बन गया था ।

पाँ० व्यक्ति : यह संन्यासी क्या वही है ?
ओह !

संन्यासी : [एकाएक प्रविष्ट हो]
नहीं,
सब झूठ है
प्यासोंकी नगरीमें
सब कुछ झूठ है ।
[रुककर]
सच केवल यही है,
वह राजा, प्रतिनिधि तुम्हारा
वह मैं नहीं हो सकूँगा ।
सच मानो

मेरी आँखोंमें गहो
मैं मात्र एक व्यक्ति हूँ
तुम्हारी तरह
प्यासा-थका हारा—
जिसकी यह नगरी
जन्म भूमि है
कर्म भूमि है
मोक्ष भूमि है !

[फिर पृष्ठभूमिमें जन-कोलाहल उठता है ।]

सब : [आर्त स्वरमें] पानी दो,
हमें पानी चाहिए ।

प० व्यक्ति : मत दो वाणी और
हम चुक गये
हमें केवल पानी दो—
पानी दो ।

संन्यासी : [आगे बढ़ता हुआ] आओ माँ गें सरोवर देवतासे !
फिर शरण जायें,
स्पष्ट स्वीकार कर लें
हमने अवश्य तोड़ी मर्यादा !

[सरोवरके सामने घुटने टेककर]

ओ सरोवरके देवता !
हमें फिरसे मर्यादा दो

हम शपथ लेते
प्यासकी
हमें मर्यादा दो
हम उसे निश्चय निभायेंगे !

प० व्यक्ति : हम शरण हैं
ओ सरोवरके देवता !
हम परीक्षित हों,
हमें मर्यादा दो !

दू० व्यक्ति : दो मर्यादा
हम उत्सर्ग देंगे ।

ती०, चौ०, पाँ० : [सम्मिलित] हमें पानी दो !
हमें पानी दो !

[सूखे सरोवरसे तूफ़ानके स्वरके साथ देवताका प्रवेश ।]

संन्यासी : [श्रद्धानत] हम नतसिर
लो श्रद्धा हमारी
ओ देवता सरोवरके !
सारी प्यासी नगरीका
अभिवादन तुम्हें !

[आगे बढ़ता है !]

स्वागत है तुम्हारा !

प्यासोंका प्रतिनिधि मैं ।

[सब नतसिर रह जाते हैं, देवताका प्रवेश ।]

देवता : संन्यासी !
तुमने नहीं देखा ?
नगरवालो,
तुमने भी नहीं देखा—
अभी-अभी मेरी सूनी छातीपर
घायल अंकमें,
दो जलती रेखाएँ उठी थीं
एक थी भटकती आत्माकी
अन्धी, लँगड़ी यातनाके दर्दमें कराहती
दूसरी थी, उसके प्रेमी पुरुषकी
वह भी लँगड़ा था ।
इतने घाव थे शरीरपर
कि दर्दसे आँखें पथरा गई थीं ।

[आगे बढ़कर]

देवता : पर कुछ दूरपर
मैंने देखा—
प्रेमी, प्रियाको
कन्धेपर लाद
फिर भी गाता चला जा रहा था,
चला जा रहा था ।

[रुककर]

बोलो !
यह दृश्य तुममेंसे किसीने नहीं देखा ?

सब व्यक्ति : किसीने नहीं ।

देवता : तब कैसे सत्य पा लिया
तुम सबोंने !
क्यों संन्यासी ?
कैसे पा लिया
विना देखे ?

संन्यासी : क्योंकि माथा झुका था मेरा
आँखें नत थीं ।

सब : [आर्त्त स्वरमें] पानी दो हमें !
पानी दो !!

संन्यासी : सरोवर देवता !
अब शेष नगरीको पानी दो !

देवता : साक्षी रहोगे न
क्यों संन्यासी ?
व्रत दो मुझे
प्रतिश्रुत हो ।

संन्यासी : प्रतिश्रुत हूँ
साक्षी क्या ?
भोगी भी रहूँगा ।

[देवता चारों ओर देखता हुआ कुछ सोचता है, सहसा हाथ उठाकर]

देवता : तो सुनो नगरी वालो !
मेरे शरणागत !!
निश्चय मैं पानी दूँगा ।
लेकिन शर्त है एक

संन्यासी : [दोनों हाथ उठाकर] स्वीकार है हमें !

देवता : तो सुनो !
सरोवरकी घाटीमें
किसी प्रतिनिधिकी बलि होगी–
और ऐसी बलि
जिसकी आत्मा,
सदा, हर क्षण शाश्वत
पहरा लगायेगी
सरोवरके चारों ओर—
निशदिन रक्षा करेगी
सरोवरके पानीकी,
जिससे भविष्यमें कभी कोई
आत्महत्या न करे
मुझे साधन बनाकर !

सब : [आपसमें] किसी प्रतिनिधिकी बलि होगी !

संन्यासी : प्रतिनिधिकी बलि ?
प० व्यक्ति : कौन है प्रतिनिधि हमारा ?
देवता : वही जो आत्मबलि दे !
जो निजत्वको—
समष्टिकी वेदीपर
सहज मनसे उत्सर्ग दे ले।

[रुककर]

जैसे राजा नगरीका।
संन्यासी : जाओ नगरवालो !
राजाको लिवा लाओ
उसे बलि देनी होगी सरोवरमें

[सब जाते हैं :—'हम बलि देंगे राजाकी, राजा देगा बलि।' ये स्वर वातावरणमें उभरकर खो जाते हैं, मंचपर देवताके सामने अकेला संन्यासी रह जाता है।]

संन्यासी : क्यों देवता !
एक प्रश्न करूँ ?
देवता : निश्चय करो।
संन्यासी : क्या प्यासे तुम भी हो ?
देवता : ओह ! मैं तो कई गुना प्यासा हूँ !
क्योंकि, अंग तो मैं ही हूँ
मैं ही सूखा हूँ

सब दर्द, सब मृत्यु
आधार मैं ही हूँ।

[जाने लगता है।]

संन्यासी : अभी मत जाओ देवता !
रुको क्षण भर !
एक प्रश्न और है—
उतना पानी आयेगा कहाँसे
फिर इस सरोवरमें ?

देवता : वहींसे आयेगा,
जहाँ मेरे जनक
रो रहे होंगे।
इस नगरीके विघटनपर।

[जाने लगता है।]

संन्यासी : जा रहे हो देवता !
जाओ !
हम निश्चय बलि देंगे।

देवता : [जाते-जाते] फिर नया पानी सरोवरका
तुम सबको
देगा मर्यादा।

संन्यासी : [घुटने टेककर, नत सिर] हम पालन करेंगे !

[देवताका प्रस्थान। पृष्ठभूमिमें फिर जन-कोलाहल

उभरता है, क्षणभर बाद नगरीके वही पाँचों व्यक्ति दौड़े हुए आते हैं]

संन्यासी : क्या हुआ ?
राजा कहाँ है ?

प० व्यक्ति : नगरीसे भाग गया।

दू० व्यक्ति : उस राजाकी शरण गया,
जिससे वह सैन्य-सन्धि कर रहा था।

संन्यासी : [चिन्तासे] हूँ···मैनापुरीके राजाकी शरण

सब : [एक स्वरमें] क्या होगा अब ?

[एकाएक पागलका प्रवेश]

पागल : [हँसकर] होगा क्या !
मैं दूँगा बलि !!

[सब देखते रह जाते हैं]

पागल : पागल नगरीका प्रतिनिधि मैं हूँ।
पागल नगरी !
पागल राजा !

[तेज़ीसे सरोवरके सूनेमें बढ़ जाता है, नगरी के पाँचों व्यक्ति कगारपर खड़े हो जाते हैं।]

संन्यासी : नगर वालो !
रोको उसे !
पागलकी बलि नहीं होती,

अवैध है, रोको उसे।
वह प्रजा है।
प्रतिनिधि मैं हूँ !

प० व्यक्ति : [दौड़ता हुआ] हाय उसने तो दे दी बलि !

शेष सब : [एक स्वरमें] दे दी बलि, पर पानी नहीं आया।

प० व्यक्ति : वह प्रतिनिधि कहाँ था ?

संन्यासी : पर सत्य था वह—
प्यासोंका तप था वह !

प० व्यक्ति : निरर्थक थी उसकी बलि।

संन्यासी : पर अमर है वह
उसकी आत्मा
चिर शान्त होगी।

सब : [डरे हुए] क्या होगा अब ?

संन्यासी : होगा क्या ?
मैं दूँगा बलि
ऐसी बलि, जैसा कि प्रतिश्रुत हूँ देवतासे।
आत्मा मेरी
सदा, निशदिन
इस सरोवरके किनारे
घूमा करेगी
पहरेमें
रक्षामें।

प० व्यक्ति : तुम बलि दोगे ?

संन्यासी : हाँ, मैं दूँगा बलि !

भाग जाने दो राजाको
एक दिन मैं भी भगा था स्वार्थहित
शायद तब मैं प्रतिनिधि नहीं था
स्वार्थी था
अहंकारी था ।
प्रतिनिधि आज हूँ मैं,
दर्शन मिला है मुझे आज पहली बार
यह प्रतिनिधित्व क्या है,
कौन है प्रतिनिधि ?
सच, यह दर्शन उन सबने दिया है—
असंख्य भोले शिशु
दुधमुहीं चितवन
असंख्य वृद्ध, रोगी—
जो मर गये प्यासे,
जो बलि दे गये पागल बन, राजमाता बन
सत्यकी वेदीपर चुप चाप ।
वे ही मूल हैं दर्शनके,
वे ही उत्स हैं प्रतिनिधि भावके

[आगे बढ़कर]

चलो बलि दूँगा मैं !

प० व्यक्ति : [त्रस्त-सा] संन्यासी, तुम्हारी बलि !

संन्यासी : हाँ, आओ,
आश्वस्त हो
मैं प्रतिनिधि हूँ
मेरी बलि पानी दिलाकर
मर्यादा नयी देगी—
रक्षा करना तुम।

[सबके संग आगे बढ़ता हुआ]

आओ चलो उतरें
सरोवरकी घाटीमें !

[संन्यासी पाँचों व्यक्तियोंके संग सरोवरकी ओर बढ़ता है। जैसे ही लोग सरोवरके कगारपर पहुँचते हैं, देखते हैं कि सरोवरमें बहुत तेज़ीसे पानी भरता आ रहा है।
पानी उभरनेके तीव्र स्वरसे सारा वातावरण भरता जा रहा है और उसके ऊपर नगरीकी जनताका आनन्दमय कोलाहल।]

सब : [समवेत] पानी पानी !
आ गया पानी !!

प० व्यक्ति : संन्यासी !
आ गया पानी !!
भर गया सरोवर !

सब : [एक स्वरमें] पी लो, पी लो ।

भर लो आत्मा !

दू० व्यक्ति : कितना शुभ ।
कितना सुन्दर ।
बिना संन्यासीकी बलि दिये ।
आ गया पानी !
भर गया सरोवर !!

प० व्यक्ति : संन्यासी
ओ संन्यासी !
तुम चुप क्यों हो गये ?
बोलो क्या हो गया तुम्हें ?
बोलो ?

संन्यासी : हम हार गये
झुक गया मेरा माथा
बाजी जीत ली उस पुरुषने
बलि उसीने दे दी सरोवरमें

[गिरी हुई वाणीसे]

मैं नहीं
कोई नहीं
प्रतिनिधि वही था—
वही—जिसे हम सबने मारा था,
यातना दी थी ।

जिसकी प्रिया हमने छीन ली थी,
डुबोया था हमींने जिसकी प्रियाको
उसीने हमारे लिए
बलि दे दी सरोवरमें !

[जन-कोलाहल जैसे संगीत-स्वरकी तरह उभरता चलता है। मंचका सारा दृश्य जीवनकी स्निग्धता एवं रसमयतासे भव्य हो आता है।]

संन्यासी : [सबके ऊपर] उसीने बलि देकर—
हमें पानी दिया।
देखो उसका सिर, माथा देखो,
उदित हो रहा है सूर्य बन, पूरबमें।

प० व्यक्ति : पा लिया सत्य हमने !
पा ली मर्यादा !!

सब : [एक स्वरमें] हम रक्षा करेंगे !

दू० व्यक्ति : विघटित नहीं होंगे अब !

ती० व्यक्ति : अब सरोवरको कभी
सूखने देंगे नहीं।

चौ० व्यक्ति : हम मर्यादित रहेंगे

पाँ० व्यक्ति : जीवन पूत हुए हम फिरसे।

संन्यासी : [हाथ उठाकर] जाओ पहले
भर पेट पानी पी लो सरोवरका

फिर प्रतिश्रुत हो !

[पाँचों व्यक्ति सरोवरमें पानी पीते हैं ।]

संन्यासी : भर लो आत्माका हर छोर पानीसे
भिगो लो मनके सब द्वार पानीसे ।
सरोवरका नया पानी
नया जीवन
चढ़ा लो मन मोतियोंपर नया पानी
भर लो नयन सीपियोंमें नया पानी
सरोवरका नया पानी
नया जीवन !

[बढ़कर स्वयं पानी पीता है ।]

संन्यासी : [लोगोंको दिखाता हुआ ।]
देखो सरोवर क्षितिजपर
नया सूरज
नई चन्दा
देखो, सरोवरके अंकमें,
कमलकी सेजा लगी है—
पुरुषकी रानी—
प्रिया बैठी है
अब भी बैठी है बिरहनी
और पुरुषकी आत्मा
पहरा दे रही है

सरोवरके चारों ओर

[सब चुपचाप देखते हैं]

संन्यासी : चलो प्रतिश्रुत हो !
पानी लो, अंजुलिमें
पानी लो !

[सब पानी लेते हैं।]

शब्द दो देवताको
आत्मवाणी दो उस प्रतिनिधि आत्माको
हे प्रभू !
हे पुरुष !
हे सरोवर !
हे जीवन !
शरण दो उस आत्माको,
जिसने बलि दी है यहाँ
वह प्रतिनिधि है हमारा
हमीं हैं वह
शरण दो उसे !
प्रियको, प्रियाको दो !!
हे पुरुष !
हे सरोवर !
हे जीवन !
हम प्रतिश्रुत हैं

मनमें नयनमें पानी
अंजुलिमें पानी
हम प्रतिश्रुत हैं—
हम हर क्षण करेंगे
रक्षा सरोवरकी ।
कभी सूखने नहीं देंगे
जो जीवन मिला है ।
अब कभी डूबने नहीं देंगे !
हे जीवन,
हे सरोवर देवता !
शरण दो उस आत्माको
जो प्रतिनिधि है हमारा ।

[पाँचों व्यक्तियोंके संग संन्यासी नतसिर सरोवरके सामने झुक जाता है । धीरे-धीरे सरोवरकी कमल-शय्यापर नीला नीला प्रकाश फैलता है और उस रम्य ज्योतिमें राजकुमारीकी आत्मासे पुरुषकी आत्माका मिलन होता है, और वहीं गीत उभरता है—'पलकन धोऊँ पग पिया, कर सोलह शृङ्गार; पलकन धोऊँ पग पिया' ।

[पर्दा]